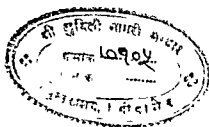




२१५  
पाना

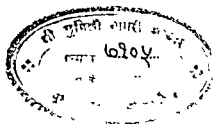
५९





२१४  
पृष्ठानुक्रम

शिक्षक - दिवस  
१९६८

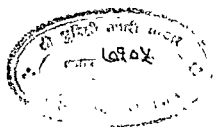




२१५  
कहाती

# कैसे भूलूँ

[राजस्थान के मृजनीशील शिक्षकों का तस्मरण-संग्रह]



सम्पादक

ज्ञान भारित्स

चन्द्रकिशोर शर्मा : प्रेम सवसेना

शिक्षा विभाग राजस्थान के निष्प

**स्पॉलो पब्लिकेशन**

सवाई मानसिंह हाईवे, जयपुर-३

© शिक्षा विभाग, राजस्थान  
बीकानेर

● प्रकाशक :  
अपोलो पब्लिकेशन  
सवाई मानसिंह हाईवे, जयपुर-३  
द्वारा  
शिक्षा विभाग, राजस्थान के  
लिए प्रकाशित

● प्रथम संस्करण  
सितम्बर १९६८

● मुद्रक :  
दुर्गा प्रिंटिंग वर्क्स  
दरेसी नं० २  
आगरा-४

२१५  
कहानी

आमुख

शिक्षा विभाग, राजस्थान ने राजस्थान के मृज्जनीत शिक्षकों की श्रेष्ठ साहित्यिक रचनाओं के प्रकाशन में योग देने की नीति अपनायी है। इस क्रम में गत वर्ष शिक्षकों की रचनाओं के तीन सग्रह—‘प्रस्तुति’, ‘प्रस्थिति’ तथा ‘परिक्षेप’ शिक्षक दिवस के अवसर पर प्रकाशित किये गये थे। उसके बाद उर्दू भाषा में लिखने वाले श्री ‘मसूर’ तथा श्री ‘सातिका’ की कृतियाँ—‘दार-की-दावत’ तथा ‘सितक-ए-गोहर’ भी प्रकाशित की गयी। यह प्रसन्नता का विषय है कि इन प्रकाशनों की प्रत्येक क्षेत्र में सराहना की गयी तथा इस प्रयास का स्वागत किया गया।

मृज्जनीत शिक्षकों की रचनाओं के प्रकाशन के लिए शिक्षक दिवस सबसे अधिक उपयुक्त अवसर है। अस्तु, ग्राम की आगे बढ़ते हुए इस वर्ष भी तीन रचना-सग्रह पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किये जा रहे हैं। यह सग्रह उनमें से एक है। मुझे आशा है कि इस प्रकाशन तथा शिक्षकों द्वारा लिखित ग्रन्थों के प्रकाशन में सहयोग देने की नीति से शिक्षकों में साहित्य-रचना के प्रति अधिक उत्साह जागेगा तथा अन्य शिक्षक, छात्र एवं सभी विचारशील व्यक्ति इन पुस्तकों को पढ़कर आनन्द प्राप्त करेंगे।

विभाग अपने इस प्रकाशन कार्य में राजस्थान के अधिक से अधिक प्रकाशकों से सहयोग प्राप्त करने की कामना रखता है। यह सन्तोष की बात है कि प्रकाशकों ने मुक्त मन से विभाग की सहयोग दिया है। इसके लिए वे धन्यवाद के पात्र हैं।

साथ ही विभाग उन सभी शिक्षकों के प्रति भी आभारी है जिन्होंने इन ग्रन्थों के लिए अपनी रचनाएँ भेजकर सहयोग प्रदान किया है।

शिक्षक दिवस १९६८

हरिमोहन माथुर  
अपर निदेशक  
प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा,  
राजस्थान





## अनुक्रम

१. मदनलाल दधीरा : तुम भाग्यर हो ? ६
२. गोपालकृष्ण जिंदम : दरिद्रनागमण की आदमं दया १२
३. मदनलाल शर्मा : मैं भी खूनी हूँ १४
४. मरुत शकुन : प्रायश्चित्त १७
५. होसीलाल शर्मा 'पौर्णम' : जीवन का नाटक २०
६. प्रजेण 'चंचल' : वे खंजारे २२
७. डॉ० नारामणदत्त श्रीमाली : खुदा के बन्दे २४
८. शंकरलाल माहेश्वरी : अन्तिम दर्शन २६
९. शिवराज छंगाणी : धूल भरे ह्रीरे २६
१०. उदयवीर सैनी : मनुष्य नहीं देवता ३२
११. राममहाय विजयवर्गीय : वह बालक ! ३३
१२. मानसिंह वर्मा : शिक्षक जीवन का वह पहला दिन ३५
१३. कचन लना : आत्मानुशासन ३७
१४. बलवीरसिंह 'करण' : स्नेहोपहार ३६
१५. योगेन्द्र भटनागर : छोटा आइसटार्टन ४२
१६. राजानन्द : अध्यापक एक जकशन ४४
१७. कामीलाल शर्मा : वे जिम्मेदार छात्र ४६
१८. मदनमोहन शर्मा : प्रतिज्ञा ४८
१९. जनकराज पारीक : चौथे चाँद का दाग ५०
२०. नृसिंहराज पुरोहित : जंगली गुलाब ५२
२१. सुरेण भटनागर : लौटा हुआ मनी ऑर्डर ५५
२२. प्रेमराज वर्मा : सीमा ५७
२३. श्याम श्रोत्रिय : मेरा विश्वास ५९
२४. द्वारकेश भारद्वाज : मित्र-मण्डली ६१

२५. हरिजनकर जर्मा : शिक्षक का सम्मान ६४  
 २६. गुरुदत्त जर्मा : द्यूजन ६६  
 २७. नन्दकिशोर जर्मा : सहयोग ६८  
 २८. पन्नालाल जर्मा : एक वाक्य ७०  
 २९. पुष्पकान्त न० दलाल : पश्चात्ताप ७२  
 ३०. नीतानाम रयागी : बालिका की सत्य निष्ठा ७४  
 ३१. राधाकृष्ण शारत्री : चापू व नेहरू ७६  
 ३२. तेजसिंह 'तरुण' : स्नेह की अमिट रेखाएँ ७९  
 ३३. वेदप्रकाश जोशी : हंस और मोती ८१  
 ३४. सोहनलाल प्रजापति : मैं और मेरी सिगरेट ८३  
 ३५. श्रीकृष्ण विष्णोई : साँसों के ढेर में खोये कुछ क्षण ८५  
 ३६. राधामोहन पुरोहित : बीज और वृक्ष ८८  
 ३७. लक्ष्मीनारायण जोशी : प्रेरणा ९०  
 ३८. राजेन्द्रप्रसाद सिंह डांगी : पत्थर तो फेंका मगर... ९२  
 ३९. गिरिवर गोपाल 'अलवरी' : सरस्वती का अपमान ९३  
 ४०. लक्ष्मीनारायण जोशी : भर पाया बिटिया को घुमाकर ९५  
 ४१. ब्रजमोहन द्विवेदी : वे महिलाएँ ९८  
 ४२. श्रीनन्दन चतुर्वेदी : जब मुझे शिक्षा मिली १०१  
 ४३. रामेश्वरदयाल श्रीमाली : हार नहीं मानूंगा १०४  
 ४४. जी० बी० आजाद : मूक प्रेरणा १०६  
 ४५. चन्द्रकिशोर जर्मा : त्यागपत्र १०८  
 ४६. सीता अग्रवाल : मंजिल तेरे पग चूमेगी ११२  
 ४७. भागीरथ भार्गव : दृढ़ इच्छा शक्ति ११५  
 ४८. विमला भटनागर : कप्तान ११७  
 सम्पर्क-सूत्र १२१

## तुम मास्टर हो ?



मदनलाल दशोरा

.....वात बहुत पुरानी है, शायद सन् १९५१-५२ रहा होगा। उस समय मेरी नियुक्ति शिक्षा विभाग में म० अ० के स्थान पर मा० शा० घोसुण्डा में स्थानापन्न अध्यापक की तरह की गयी थी। यह मेरी प्रथम नियुक्ति थी। इसके जलावा अध्यापक की नौकरी मेरे ही गाँव में मिली थी। यह सबसे अधिक प्रसन्नता का विषय था।

उस जमाने में शिक्षा विभाग में स्कूलों की संख्या कम थी और उसके अनुपात में शिक्षा निरीक्षकों के कार्यालय भी कम ही थे। अतः स्थानापन्न अध्यापकों की नियुक्ति के चार-पाँच माह बाद या ३० अप्रैल की अवधि समाप्ति के बाद वेतन मिलना साधारण बात थी। कुछेक अध्यापक इसके अपवाद जरूर थे, सम्भव है वे अच्छी सायत में नौकरी पर आये हों।

मेरी नौकरी को भी अवधि समाप्त होने जा रही थी। छः माह की नौकरी में दो बार वेतन मिला था, अन्त में अवधि समाप्त हो जाने के कारण शाता में मुक्त कर दिया गया। उस समय मुझे चार माह का वेतन लेना बकाया था। वेतन उपनिरीक्षक कार्यालय, चित्तौड़गढ़ से मिलता था।

१८ जून, १९५२ को अपने बकाया वेतन के सम्बन्ध में मैं चित्तौड़गढ़ प्रातः ११ बजे के लगभग गया। अच्छी सायत में घर से निकलना हुआ था, जिसमें कार्यालय में वेतन बिन्द बन कर तैयार मिला, केवल ट्रेजरी कार्यालय में पास कराना शेष था। अनुनय-विनय करने के बाद विल ट्रेजरी में भेजा गया। वहाँ में भी इसी शस्त्र का प्रयोग करके विल पास करवाया। इस दौड़धूप में मार्गकाल के ५ बज गये थे। वेतन की रकम चार माह की २०० रुपये थी, क्योंकि उस समय अध्यापकों का वेतन बहुत ही कम था। यह एक मास इतनी रकम का हाथ में आना मेरे लिये जीवन में पहला अवसर था।

पर पर आने के लिए धन पैदा करना नग करने के अन्वाया अन्य कोई साधन नहीं रह गया था। रात्रियों के ७ निस्तोड़गढ़ में ही बज गये थे। आठ मीन का रात्रा नग करना था। रात्रि ओपरी, पास में रुकना का होना आदि दुविधायें रात्रा रोक रही थी; किन्तु आत्म-यत्न के सहारे अपने मार्ग की ओर बढ़ चला।

आपना मार्ग निनिधन रूप में तय कर लिया, रास्ते में कष्ट विचार मस्तिष्क में उठ रहे थे। नभी का निराकरण रात्रि की भयंकर नीरवता में होना जा रहा था कि अचानक पीछे से किसी अज्ञात व्यक्ति ने मेरे हाथ से थैला छपट कर छीन लिया। इस प्रकार की आकस्मिक घटना ने मेरे रोंगटे खड़े कर दिये, मैं पूर्ण रूप से संभन भी नहीं पाया कि ४-५ लठैतों ने एक साथ मुझ पर चार करने की मुद्रा बनायी और साथ ही कड़कती आवाज में आदेश दिया कि जो कुछ तुम्हारे पास हो हमारे सामने रख दो। मैंने मारी घटना को समझ लिया और मौन गड़ा रखा, क्योंकि जो कुछ मेरे पास था वह तो छीन लिया गया था। मेरी ओर से प्रत्युत्तर नहीं मिलने पर उन्होंने मारने की धमकी दी। जिसने मेरे पास से थैला छीना था मैंने उसकी ओर संकेत किया, उन्होंने थैले को टटोला, उसके अन्दर के सामान को बाहर निकाला, थैले के अन्दर डेढ़ दर्जन केले भी थे। सर्वप्रथम उन्होंने केले खाये, इसके बाद कपड़ों को फेंकने लगे। उनमें जो कुछ था वह बाहर निकल पड़ा, मेरा चार माह का पारिश्रमिक, जिसके निमित्त मैंने चित्तौड़गढ़ की यात्रा की थी उनके हाथ लग गया।

रुपयों का वण्डल देखकर वे लठैत बड़े प्रसन्न हुए और अपने रास्ते पर जाने को मुड़े। मैं भी निराश मन से अपने गाँव की ओर बढ़ा कि आवाज आयी, “ठहरो...” देखता हूँ कि एक भीमकाय व्यक्ति कानों तक लट्ठ पकड़े मुझे कह रहा है (शायद वह उस गिरोह का नेता होगा)। इस कठोर आवाज ने मेरे हृदय को कम्पित कर दिया क्योंकि अब पिट जाने का पूरा खतरा था, उसने कहा, “तुमने हमको बिना किसी विरोध के रुपये हवाले कर दिये, इस सम्बन्ध में एक भी शब्द नहीं बोले, क्या करते हो।” मैंने कहा, “मास्टर हूँ और चार माह का चढ़ा वेतन लेकर घर जा रहा था कि तुम लोगों ने आकर उसे छीन लिया; विरोध करना मेरे स्वभाव में नहीं है, जो रुपया तुमने लिया है, वह परिश्रम का है, बालकों की शिक्षा देने के कारण मुझे मिला है न कि तुम लोगों की तरह छीना-झपटी से।” न जाने किस अदृश्य शक्ति ने मुझे इस प्रकार कहने की शक्ति प्रदान की यह मैं सोच न सका। मैंने जो कुछ कहा उसका प्रभाव उस लठैत पर पूरा पड़ा, उसने मुझे पुनः मेरा रास्ता रोककर पूछा, “मास्टर हो।” इसके साथ ही उसके अन्य तीनों साथियों ने भी यही पूछा, “मास्टर हो”—“मास्टर हो।” रात्रि के भयंकर अन्धकार में मुझे इस प्रकार

बोध हुआ जैसे चारों दिशाओं से आवाज आ रही है कि "मास्टर हो," "मास्टर हो।"

चारों लठैन एक साथ जमीन पर बैठ गये और आपस में कहने लगे—  
 "मास्टर, जो किसी का कुछ नहीं लेता है बल्कि देता है और हमारे बच्चों को शिक्षा देता है, उससे हम क्या लें, हमारा उनके प्रति बहुत आदर है।" इस प्रकार की वार्तालाप के दौरान वे अपने बचपन की बातें, स्कूल जीवन की बातें एवं उनकी जित-जित अध्यापकों ने पढ़ाया उनके प्रेमपूर्ण व्यवहार की बातें करने लगे। जो थोड़ी देर पहले राक्षस बनकर मानवता का भक्षण कर रहे थे वे अब पूर्ण रूप से मानव बन गये थे और मानवता की रक्षा की भावना में ओनप्रोत हो गये थे। जिनकी वाणी में कठोरता थी अब उनकी वाणी में मधु टपकता था, इस प्रकार का परिवर्तन मैं आश्चर्यचकित होकर देख रहा था, मैं भूल चुका था कि मुझे घर पर जाना है, मैं भूल चुका था कि मेरे साथ कुछ सपन पहले बण घटना घटी थी।

कुछ क्षणों की चूपी और फिर उसके बाद "हमें माफ करना" यह आपका धैर्य" शब्द मुझे सुनायी दिये। मैं उनको कुछ कहूँ इसके पूर्व ही वे रात्रि की कालिमा में अदृश्य हो चुके थे। मैं गया धन वापस पाकर भी खोया-खोया-सा अपने गाँव के रास्ते की ओर चल पड़ा।

रास्ता कटता जा रहा था और मैं विगत घटना के सम्बन्ध में सोचा हुआ चल रहा था। मेरे हृदय के कोने में एक अविश्वास की लहर उत्पन्न हुई और मैं यह सोचने लगा कि मेरा धैर्य जो मुझे लौटाया गया है उसमें रुपये हैं भी या नहीं या यह चाल रुपये लेकर मुझे धैर्य सौंपने की तो न थी। मन में उथल-पुथल मच गयी। किन्तु मार्ग में, मैं धैर्य को देख न सका।

घर पर आकर सर्वप्रथम धैर्य का सामान बाहर निकाला तो क्या देखता हूँ कि रुपयों के घण्टल के साथ एक रुपया बाहर से अटका हुआ है, धड़कते दिल से रुपयों को गिना, पूरी रकम के साथ एक रुपया अधिक। कहाँ तो दो सौ रुपये ही जा रहे थे और कहाँ दो सौ के साथ एक रुपया और अधिक मिला।

एक रुपये का रहस्य काजी सोचने के बाद समझ में आया कि उन लोगों ने कैसे भी मुझ में 'मास्टर जी' के नहीं छाये थे, कैलों का दाम भी एक रुपया ही था। मेरा मस्तिष्क अनायास ही उन अज्ञात व्यक्तियों की याद में झुक गया और मैं सोचने लगा—"मास्टर" का व्यवसाय कितना पवित्र है, समाज विरोधी कार्य करने वालों के दिलों में भी इस पद के प्रति इतनी आस्था है तो अन्य व्यक्तियों के प्रति बुरी कल्पना का तो स्थान ही नहीं रहता।

मैं 'कैसे भूलूँ' उन मेरी चार अदृश्य प्रेरणाओं को जिन्होंने मुझे इस व्यवसाय की ओर निष्ठावान् बनाया।

## दरिद्रनारायण की आदर्श दया



गोपालकृष्ण जिंदल

सरजू आज इस धरती पर नहीं है; किन्तु मेरी स्मृति में वह सदैव के लिए टेंगा हुआ है। उसके श्रद्धा और करुणा से भीगे चेहरे की स्मृति जैसे आज भी स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में शब्द मिलाकर कह रही है—“मन का अमृत कभी समाप्त हुआ है रे ? दोनों हाथों से उलीचे जा पगले ! कृपणता क्यों बरतता है ?” अपने घर में अँधेरा रखकर भी दूसरे के घर में दिया जलाना मैंने सरजू में देखा।

मैं उस गाँव में स्थानान्तरित होकर गया था। परीक्षा में बैठने की अनुमति मिल चुकी थी, किन्तु वेतन का कुछ पता न था। अनुमति वैसे ही विलम्ब से प्राप्त हुई थी। फिर, अब तो लेट फ़ीस देकर भी फ़ॉर्म भेजने का समय पास आ रहा था। सोच रहा था यदि पैसों के अभाव में फ़ॉर्म न भरा गया तो एक वर्ष व्यर्थ चला जायेगा। गाँव में किसी से जान-पहचान नहीं थी। उधार माँगने में आत्मग्लानि होती थी। चिन्ता-सागर में डूबता-उतराता एक दिन बैठा था कि शाला का 'पार्ट-टाइम सर्वेण्ट' सरजू, जिसे उन दिनों झाड़ू-पानी के तीन रुपये माहवार मिलते थे, मेरे पास आया और अभिवादन के पश्चात् सामने धरती पर बैठ गया। मुझे चुप देखकर उसने नेत्रों में ममता का अथाह सागर समेटे मुझसे चुप्पी का कारण पूछा और तब मैंने अटकते-अटकते उससे पैसों के अभाव की बात कह दी।

एक-एक पैसे को मोहर समझने वाला, दुःख-दारिद्र्य की साक्षात् प्रतिमा वह दरिद्रनारायण दूसरे दिन सुबह ही मेरे पास ५० रुपये लेकर आया। अन्धे को क्या चाहिए—दो आँखें। वस, पैसे लेकर मैं भागा हुआ अजमेर आया और फ़ॉर्म भर दिया।

रवि के रथ का पहिया घूमता रहा। काले और धीले चूहे जिन्दगी को

कुनरते रहे, किन्तु न तो वेतन आया और न मैं सरजू को रुपये दे पाया। दिन, मप्ताह, मास बीतते गये। अब तीसरा मास भी समाप्ति पर था। मैं चिन्तित था और सरजू मोन, धीर और अशुब्ध।

एक दिन शाम को विद्यालय की छुट्टी के बाद मैं घर की ओर जा रहा था कि कुछ लोगों को सामने पेड़ नते खड़े पाया। आवाजें आ रही थी—“नहीं चुकाया जाता तो रंते क्यों लिये ? ...लेत परम सुय उपजे लेके दियो न जाय । अजी पूरा अमलदार है; ऐसे अमल खाने की बजाय मिट्टी क्यों नहीं फाँकता...” आदि, आदि।

पास गया और जो देखा तो माया घूम गया। आँखों के आगे तिरमिरे तैरने लगे—एक फटे टाट पर एक मटकी पानी की ओर एक मिट्टी की हँडिया लिये सरजू बैठा है। लोगों ने बतलाया, “महाजन से ५० रुपये तीन माह पहले पन्द्रह दिन का नाम लेकर अपनी शोपड़ी और एक-दो कसि के बरतन गिरवी रखकर लाया था, आज तक नहीं चुकाये, इससे महाजन ने निकाल बाहर किया और सामान को नीलाम कर दिया।”

सब कुछ समझ गया। हृदय ने चाहा कि दूसरों के लिए हलाहल पान करके भी शान्त और विकाररहित इस महायोगी साक्षात् शिव के धरण पकड़ लूँ; किन्तु आगे बढ़ने तक तो मैं पूर्णतया बिगलित हो गया था। आँखों में आँसू बह चले। पास जाकर मैं सरजू से निपट गया और कुछ समय बाद यह हो कह पाया—“उठो सरजू ! चलो, मेरे साथ रहना।”

महाजन का हिमाय उसी दिन किसी तरह बेबाक किया। पीछे से गाँव वाले कह रहे थे—“मास्टर साहब बड़े सज्जन, दयालु और न जाने क्या-क्या है।” और मेरा सम्पूर्ण मानस गद्गद था कि उसने नर में छिपे नारायण को पा लिया।

भला बताइए कि निःस्व होकर भी मुझे सर्वस्व देने वाले उस महान् उपकारी को मैं ‘बंसे भूतू’ ?



# मैं भी खूनी हूँ



मदनलाल शर्मा

गत वर्ष ग्रीष्मावकाश में, मैं हिमाचल की राजधानी शिमला गया। मुझे इस शहर के सौन्दर्यपूर्ण वातावरण में लगभग १५ दिन रहने का सौभाग्य मिला। इस अवधि में, मैंने शिमला के अनेक दर्शनीय स्थानों को बहुत निकट से देखा। मुझे इस सुन्दर पहाड़ी नगरी की हर चीज में कुदरत की विशेष अपार कृपा की साक्षात् झलक दिखायी दी। शिमला के शास्त्र, राष्ट्रपति भवन, एनाडेल, गलेन, चैंडविकफाल, कुफ़री, मालरोड, ग्रैंडहोल और लक्कड़ बाजार इत्यादि प्रसिद्ध स्थानों को देखने के बाद, एक दिन मैं, इस शहर से लगभग ८ मील दूर स्थित, सांकली नामक एक गाँव की ओर, खुली वायु में भ्रमण हेतु चल दिया। प्राकृतिक सुन्दरता के उस अपूर्व वातावरण में मुझे ८ मील की लम्बी यात्रा का आभास तक भी न हुआ। सांकली गाँव अब केवल १५० गज की दूरी पर था। जंगल के खुले और शान्त वातावरण में, कुदरत के अद्भुत शृंगार से जी वहलाने हेतु, मैं एक खूबसूरत पेड़ के नीचे बैठ गया और अपने थर्मस का ढकना खोलकर चाय के एक-एक घूंट का आनन्द लेने लगा। अभी मैंने चाय के दो-चार घूंट ही पिये होंगे कि मुझे मेरे स्थान से लगभग ५ गज की दूरी पर, एक विल से निकलता हुआ चूहा दिखायी दिया। चूहे के मुँह में एक चाँदी का रुपया था। चूहे को चाँदी का रुपया मुँह में लिये देख, मेरा ध्यान उसी की ओर केन्द्रित होना स्वाभाविक था। मैं तुरन्त एक बड़ी झाड़ी की ओट में चुपचाप बैठ चूहे की गतिविधियाँ बढ़े ध्यान से देखने लगा। मेरे देखते ही देखते, चूहा उस चाँदी के रुपये को विल से बाहर छोड़ पुनः विल में घुस गया। थोड़ी देर में एक और चाँदी का रुपया मुँह में दबाये वही चूहा विल से बाहर आया। उस रुपये को भी उसने पहले से रखे हुए रुपये के पास रख दिया। इस प्रकार बार-बार चूहा विल में घुसता और हर बार एक चाँदी का

रूपया लेकर ही बिल में बाहर आता। थोड़ी देर में चूहे ने बिल से बाहर खुली हवा में ५१ चाँदी के रूपयों का ढेर लगा दिया। अब वह केवल एक मिनट के लिए अपने बिल में घुसता और फिर बिना कोई विशेष विलम्ब किये बिल से बाहर चला आता। बिल में बाहर आते ही अपनी दोलत के नशे में चूर चट-चट की आवाज करता हुआ रूपयों के ढेर के चारों ओर उछलता-कूदता एक चक्कर लगाना हुआ तुरन्त बिल में घुस जाता। जंगल के प्राकृतिक वातावरण में चूहे का रूपयों के ढेर के चारों ओर फुदक-फुदक कर नाचना, निःसन्देह उसके हृदय की प्रसन्नता की व्याख्या कर रहा था। मैं चूहे की एक-एक गतिविधि का अध्ययन बड़े ध्यान से कर रहा था।

मेरे देखते ही देखते, लग रूपयों के ढेर के लगभग एक गज के अन्तर पर, एक और नया चूहा अपने बिल से बाहर निकला। नये चूहे ने रूपयों के ढेर को ध्यानपूर्वक देखा। वह भी रूपयों के ढेर का एक चक्कर लगा खुशी से नाचने लगा। फिर एक गैकिण्ड विचार करके रूपयों के पास गया और एक चाँदी का रूपया उठाकर अपने बिल में घुस गया। यह सब उस समय हुआ जब पहले वाला रूपयों का मालिक चूहा अपने बिल में घुसा हुआ था। इसी प्रकार दोनों चूहे एक-दूसरे की अनुपस्थिति में अपने-अपने बिलों से बारी-बारी बाहर आते और दोनों एक अद्भुत खुशी की तहर में खोये-खोये नजर आ रहे थे। रूपयों का असली मालिक चूहा तो रूपयों का चक्कर लगाकर, प्रसन्नता में नाचना हुआ अपने बिल में घुस जाता, परन्तु दूसरा चोर चूहा, पहले चूहे की अनुपस्थिति में चाँदी का एक रूपया अपने मुँह में दबाकर तुरन्त अपने बिल में घुस जाता था। रूपयों के असली मालिक चूहे को इस बात का कोई ज्ञान न था कि उसकी प्रिय सम्पत्ति पर उसके किसी निकटतम पड़ोसी द्वारा ही डाका डाला जा रहा है। थोड़ी देर में ही वह चोर चूहा चाँदी के सारे रूपये एक-एक करके अपने बिल में ले गया। अभी तक रूपयों का वास्तविक मालिक चूहा अपने बिल से बाहर नहीं निकला था। यह एक ऐसा समय था, जिस समय शायद दोनों चूहे अपने-अपने बिलों में प्रसन्न हो रहे होंगे। पहला चूहा तो शायद इसलिए प्रसन्न हो रहा होगा कि उसके इक्यावन चाँदी के रूपयों की प्रिय सम्पत्ति उसके बिल से बाहर ऑक्सीजन गैस का सेवन कर रही थी। और दूसरा चूहा निःसन्देह इसलिए प्रसन्न होगा कि आज भगवान् ने उसे इतना बड़ा धन, बिना किसी परिश्रम के छत्तर फाड़ कर दिया था।

मैं अब दोनों बिलों पर अपनी नजर जमाये, चूहों के बाहर निकलने की प्रतीक्षा में बैठा, घड़ी की सुइयों के सफर का अन्दाज़ लगा रहा था। थोड़ी देर में ही चोर चूहा फिर चाँदी का एक रूपया लेकर अपने बिल से बाहर आया और उसे पहले स्थान पर रखकर फिर बिल में घुस गया। लगभग

दो मिनट बाद फिर चोर चूहा चांदी का रूपया, अपने मुँह में दबाये बिल से बाहर निकला और उसे भी उगने यथारथान रग दिया। इस प्रकार उस चोर चूहे ने एक-एक करके सभी के सभी ५१ चांदी के रूपये दुबारा अपने बिल से बाहर निकाल कर गुनी हवा में डेर कर दिये। इस बार एक नम्बो अवधि के बाद रूपयों का अमली मालिक चूहा अपने बिल से बाहर निकला और फिर रूपयों के चारों ओर नाचना-कूदता दुबारा बिल में घुस गया। मैं काफी देर तक यह सब देखता रहा। अब दोनों चूहे चारी-चारी अपने-अपने बिल से बाहर निकलते, रूपयों के डेर के चारों ओर फुदकते और नाचते हुए पुनः बिल में घुस जाते। दोनों चूहे शायद एक-दूसरे की उपस्थिति से अनभिज्ञ थे और वे दोनों ही शायद इसलिए प्रसन्न थे कि दोनों अपने-आप को चांदी के रूपयों के उस डेर का मालिक समझ रहे थे। यह दृश्य लगभग १० मिनट देखने के बाद मुझे पूर्ण भरोसा हो गया कि दोनों चूहों की एकमात्र सम्पत्ति अब इससे अधिक नहीं है। न मालूम क्यों अचानक मुझ पर भी चांदी के रूपयों के लालच का भूत सवार हो गया। मैंने दोनों चूहों की अनुपस्थिति में मानवता का खून करके अपना नापाक हाथ उन ५१ रूपयों की ओर बढ़ा दिया। अभी उन रूपयों को उठाकर अपने थैले में डाले मुझे ५ मिनट ही हुए होंगे, कि दोनों चूहे अपने-अपने बिलों से एक साथ बाहर निकले। दोनों चूहों के एक साथ बिलों से बाहर निकलने का यह सबसे पहला अवसर था। बिलों से बाहर आते ही उन्होंने जान से प्रिय सम्पत्ति को चारों ओर ढूँढा, परन्तु फिर भी जब उन्हें अपना घन न मिला, तो दोनों चूहे चारी-चारी एक मिनट के बाद भूमि पर उछले और वापस भूमि पर गिरते ही सदा के लिए मौन हो गये। यह दुःखद घटना मेरे देखते ही देखते घटी। दोनों मृत चूहों को हाथ में उठाकर मैंने अच्छी प्रकार से देखा, परन्तु वे सदा के लिए शान्त हो चुके थे। यह विल्कुल साक्षात् सत्य था कि दोनों चूहे मेरी ही सलती के कारण रूपयों के चोरी हो जाने के दुःख में डूबकर दिल के दौरे से जीवन खो बैठे थे। मेरी आँखों में आँसू उमड़ पड़े। मैंने अपनी आत्मा को बार-बार धिक्कारा, परन्तु अब क्या हो सकता था। मुझे उन रूपयों से भी घृणा हो गयी। मैंने रूपये अपने थैले से निकाल कर एक मन्दिर में चढ़ा दिये, और भगवान् से इस दुष्कर्म के लिए क्षमायाचना की। यह घटना घटे लगभग एक वर्ष हो गया है परन्तु आज भी जब कभी अचानक मुझे यह घटना याद आ जाती है तो उन दोनों चूहों का वही साक्षात् चित्र मेरे दिगाग के स्मृति-पटल पर झलकने लगता है, और मैं अपने-आप को खूनी समझ कर भगवान् से बार-बार क्षमायाचना करता हूँ।

मैं पहली बार अध्यापक पद पर आया था। आयु में छोटा होने के कारण मैं इस पद की महत्ता और गुरुत्व को नहीं समझ सका था। कक्षा में जाता और पढ़ाकर चापम आ जाता। संकोची स्वभाव के कारण किसी से अधिक सम्पर्क भी नहीं था। सानवी कक्षा का एक लड़का अपने हठीले और जिद्दी स्वभाव के कारण मुझे राटकता था। मैं इसी प्रयत्न में रहता कि कहीं इसमें कमी पाऊँ और पीटकर अपने दम्य हृदय को शांत करूँ, किन्तु वह कक्षा में पढ़ने में सघने प्रयत्न रहता, कभी किसी कार्य को अधूरा नहीं रखता। मैं जान-बूझकर अधिक कार्य देता पर वह नियमितता और तत्परता से उसे पूरा कर लाता। मेरी दीर्घा दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही थी। एक दिन अंग्रेजी विषय पढ़ाते समय मैं कुछ गलती कर गया। उसी लड़के ने मुझे मेरी गलती का बोध करवाया—“मुझे इसमें अपना अपमान अनुभव हुआ। मैंने क्रोध में आकर एक हिन्दी वाक्य श्यामपट पर ऐसा लिखा जो छात्रों के स्तर की अपेक्षा कहीं अधिक था, उसकी अंग्रेजी धनाने के लिए कहा। कोई भी छात्र उसे न कर सका। मैंने एक डण्डा मँगाया और छात्रों की अकर्मण्यता के बारे में कह कर उन्हें लापरवाह और कामचोर सिद्ध किया। भूमिका पूर्ण हो चुकी थी। मेरा स्वार्थ सिद्ध हो चुका था, मैं उस छात्र के पास आया। उसने अपना कोमल हाथ आगे पसार दिया। मेरी अलती आँखों से उसकी आँखें मिली, मेरी सुप्त भावनाएँ भड़क कर आवेश का रूप ले बैठी। तीन-चार बेंच मैंने अपनी पूरी शक्ति से मारे। उसके नेत्रों में अधु की धारा फूट पड़ी।

“हाथ आगे करो,” मैंने कहा। पर अर्ध शायद उसमें हाथ आगे करने का साहस नहीं था। मैंने सींच कर एक घप्पड़ भी मार दिया। वह असावधान था, सो घप्पड़ पड़ते ही एक ओर गिरा। डैस्क का कोना उसके माथे पर लगा

और रक्त निकलने लगा । वह अन्तिम पलान ही होना था सो उसके चार छुट्टी हो गयी । मैं घर गया—“उस बालक का मुग मेरे आँखों के आगे तैरता रहा । उनका गल भरा मुग और मुलायमी पनारी हथेलियाँ मेरे मन को विचलित करती रहीं, मेने उस दिन भोजन भी नहीं किया । दूसरे दिन मुझे मन ने मैं धाला गया । वह छान आज आया नहीं था । उस मारे दिन भी मैं विचलित रहा । रह-रह कर मुने उन बालक का दयाल आता । मुचह स्कूल जाने पर पता चला कि उसने स्कूल छोड़ दिया । मेरी अन्तरात्मा से आवाज आयी—“तू हतक है...एक कलाकार...गैता...वैज्ञानिक का...क्या पता वह बालक क्या बनता ?...आज के बालक ही तो कल देश के भविष्य बनेंगे ।” मेरे मन ने मुझे भिक्कारा—“क्या अधिकार है तुम्हें अपनी ईर्ष्या की घेदी पर किसी के भविष्य की बलि चढ़ाने की ? तुम राष्ट्र-निर्माता हो या कि राष्ट्र-हतक ?”

एक छात्र के साथ मैं उसके घर गया । वह साट पर पड़ा था । मुझे देखते ही उसने उठने का प्रयास किया पर मैंने उसे दशारे से सोते रहने के लिए कहा ।

“तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं ?” मैंने पूछा ।

इतने में अन्दर से एक स्त्री निकल कर आयी, मैंने हाथ जोड़ दिये ।

उसने भी प्रदयुत्तर दिया । लड़के ने मेरा परिचय दिया । उसकी माँ ने मुझे बिठाया ।

“माँ जी ! इसे स्कूल क्यों नहीं भेजती ?” मैंने कहा ।

“बेटा ! क्या बताऊँ, यही मेरा एक लड़का है । इसके पिता को मरे करीब पाँच साल हो गये । मैं किसी तरह इसे पढ़ा रही थी । परसों किसी दुष्ट ने इसे इतना पीटा कि उसी दिन से दुखार में पड़ा है । हम अपने वच्चीं को पढ़ाने भेजते हैं न कि उनको इस घुरी तरह पिटवाने । माँ की ममता... दूसरा नहीं समझ सकता ।”

मैं क्या कहता ? उसने जो कुछ कहा था, वह ठीक था । इसी बीच वह उठी और भीतर गयी । मेरे विचारों का तारतम्य तब भंग हुआ जब उसने आकर टोका ।

“लीजिए मास्टरजी” और उसने हाथ में पकड़ा हुआ दूध का गिलास मुझे पकड़ा दिया । मैंने दूध का गिलास मुँह से लगा लिया—“माँ की वह ममता जो उसने मेरे प्रति दिखायी मुझे विकल कर गयी ।

“अब कैसा है यह ?” मैंने पूछा ।

“दो रातों से सो नहीं सका ।” उसकी आँखें डबडबा आयीं । गोबर से लिपी धरती पर टप-टप मोती गिरे, जिन्हें धरती ने सोख लिया । बाक्री रह

गये दो निशान । तब तक मेरा अहं पूर्णतया घुत चुका था । गिलास जमीन पर रखकर मैं उस विकल नारी के चरणों में झुक गया ।

"माँ जी ! मैं ही वह दुष्ट हूँ, मुझसे गलती हुई । मैंने आपका दिल नहीं अपनी माँ का दिल दुखाया है । मैंने ही अपने भाई पर अत्याचार किया है ।"

वह अचम्भित होकर मुझे देखने लगी, "उठा बेटा ! गलती हर एक से हो ही जाती है ।" मैं समझ गया माँ के विशाल हृदय ने मुझे क्षमा कर दिया । मेरा प्रायश्चित्त पूर्ण हुआ । दो दिन से मस्तिष्क पर पड़ा अनावश्यक बोझ उतर गया । अपने-आप को मैं हल्का अनुभव करने लगा ।

"माँ जी ! ठीक होने पर इसे अवश्य स्कूल भेजना । अब ऐसा कभी नहीं होगा ।"

"बेटा ! ठीक होने ही अवश्य भेजूंगी ।"

मैं हाथ जोड़कर घर आ गया । उस दिन मे मैंने शपथ ले ली कि कभी किसी लड़के को शारीरिक दण्ड नहीं दूँगा । हम किसी के भविष्य को सँवारना चाहिए । उसे सँभाल करने का हमें कोई अधिकार नहीं ।"

# जीवन का नाटक



होतोत्तल शर्मा 'पौर्ण्य'

वात अगस्त, १९६१ की है। मैं उस समय राजकीय माध्यमिक विद्यालय, नगर (भरतपुर) में सहायक अध्यापक के पद पर कार्य कर रहा था। स्वतन्त्रता दिवस (१५ अगस्त) समारोह का आयोजन विद्यालय में भली-भाँति सम्पन्न करने की योजना बनायी गयी। विद्यालय के रंगमंच पर देश-भक्ति से पूर्ण अभिनय अभिनीत करना भी उस योजना का एक अंग था।

इस अभिनय के संयोजन का भार तो मैंने अपने ऊपर ले लिया, परन्तु विद्यालय मंच के उपयुक्त नाटक की कोई पुस्तक विद्यालय के पुस्तकालय में उपलब्ध न हुई। अन्यत्र से पुस्तक मँगाकर तैयारी करने हेतु समय का अत्यन्त अभाव था। ऐसे अवसरों पर मैं अपने मित्र डॉ० कन्हैयालाल शर्मा, तत्कालीन मैडीकल ऑफिसर से परामर्श किया करता था। उनके समक्ष मैंने अपनी व्यग्रता प्रकट की। वे बोले—“बस, इतनी-सी बात के लिए बेचैन हो रहे हो? अभी तो पाँच दिन और छः रातें आपके पास हैं।” मेरे बिना आगे प्रश्न किये हुए ही वे कहते गये—“स्वतन्त्रता संग्राम से सम्बद्ध दो-एक पात्र लेकर तथा कुछ काल्पनिक पात्र लेकर कुछ वास्तविक तथा कुछ काल्पनिक घटनाओं को एक सूत्र में सँजो लीजिए। मुझे पूरा भरोसा है आप ऐसा कर सकते हैं और आज रात में ही लिख डालिए।” प्रेरणा काम कर गयी। घर जाकर रात भर लिखता रहा। एक काल्पनिक पात्र राजवीरसिंह को चन्द्रशेखर आजाद, तथा भगतसिंह के साथ मिलाकर एक छोटा-सा नाटक लिख डाला। प्रातःकाल ही पात्र नियुक्त कर दिये गये। राजवीरसिंह का अभिनय श्री रामगोपाल गर्ग, सहायक अध्यापक को दिया गया। चन्द्रशेखर स्वयं मैं बना। निर्देशन डॉ० कन्हैयालाल शर्मा ने किया।

राजवीरसिंह को चन्द्रशेखर के समक्ष प्रतिज्ञा-पत्र पर अपने रक्त से

—से भूलूँ

हस्ताक्षर करने थे। परन्तु श्री रामगोपाल गर्ग अपनी अँगुली काटने को तैयार न थे। लेखक के नाते मैंने उनसे निवेदन किया था कि थोड़ा-सा रक्त सुई या ब्लेड द्वारा अपनी अँगुली से निकाल लेना जिससे अभिनय में भी स्वाभाविकता आयेगी तथा नाटक की आत्मा की भी रक्षा हो जायेगी। परन्तु गर्ग साहब इसके लिए तैयार न हुए। अन्त में निर्देशक महोदय ने यह तय किया कि रबर के पतले ट्यूब में लाल रंग भरकर उसे अँगुली से बाँध दिया जायेगा और उसे तेज धार वाले चाकू से काट दिया जायेगा। टपकता हुआ लाल रंग रात्रि में सामने दर्शक के रूप में बैठी भोली जनता को रक्त का आभास कराने के लिए पर्याप्त होगा।

चाकू की व्यवस्था तो हो गयी थी परन्तु लाल रंग वाले रबर के ट्यूब की व्यवस्था न हो सकी। गर्ग साहब उदास हो गये, क्योंकि लाल रंग के अभाव में उनका अभिनय विगड़ जायेगा, ऐसी उनकी धारणा थी। मैंने कहा—“चलो, रक्त नहीं तो क्या चिन्ता! हम स्याही से ही हस्ताक्षर करवा लेंगे।” अभिनय प्रारम्भ हुआ। वह दृश्य भी आया जिसमें राजवीरसिंह चन्द्रशेखर के कान्ति दल में शामिल होने जाता है। मैंने (चन्द्रशेखर) श्री रामगोपाल गर्ग (राजवीरसिंह) से कहा—

“राजवीरसिंह, मुझे इस प्रतिज्ञा-पत्र पर अपने हस्ताक्षर करने हैं।” और कागज तथा फाउण्टेन पेन उनकी ओर बढ़ा दिया। परन्तु गर्ग साहब बोले—“नहीं आजाद, इस माघारण स्याही से हस्ताक्षर करने की अपेक्षा मैं अपने रक्त से हस्ताक्षर करना अधिक उपयुक्त समझूँगा। क्या आप आज्ञा देंगे?” गर्ग साहब के पास रक्त निकालने का कोई साधन न जानकर मैंने पुनः कहा—“नहीं राजवीर, हम इस स्याही को ही तुम्हारा रक्त समझेंगे।”

“नहीं आजाद, यह जननी जन्मभूमि की स्वतन्त्रता की पुण्य प्रतिज्ञा है...” ऐसा कहते-कहते उन्होंने अपने तेज धार वाले चाकू से दाहिने हाथ की तर्जनी की अप्रत्याशित रूप से फाड़ डाला। पत्र का अधिकांश भाग रक्तरेजित हो गया। विद्यार्थ्य का प्राणण साक्षियों की गउगडाहट से गूँज उठा। जज द्वारा राजवीरसिंह को मृत्यु दण्ड के आदेश पर नाटक की समाप्ति की गयी। भावुक दर्शक आँसू सहाने हुए घर जा रहे थे। हमारे निपट्य में पहुँचते ही पूज्य प्रधानाचार्य जी ने मुझे तथा श्री गर्ग साहब को इस प्रकार छाती में लगा लिया मानो हमने सिंहगढ़ जैसे किसी अजेय दुर्ग पर विजय पा ली हो।

वह क्षण मुझे अपने जीवन में चिरस्मरणीय रहेगा।



## वे वंजारे

प्रवेश 'चंचल'

याद आ रहा है सन् १९५० । वैसे मेरी नियुक्ति ७-३-४६ की है । सर्व-प्रथम जाना हुआ प्राथमिक शाला, बड़गाँव (तहसील अन्ता में) । वैसे यह गाँव तीन वर्ग के लोगों में बँटा हुआ था । सात-आठ थे लखपति महाजन, दस-बीस ब्राह्मण परिवार और अन्य हिन्दू । और जेप सत्तर प्रतिशत वंजारे जाति के लोग रहते थे जिनका धन्दा पाड़ों (भैंसों) का व्यापार करना था ।

जाते ही अजनबी होने से कुछ दिन तो शाला में ही बिताने पड़े । फिर मकान मिला तो इसी निचली वस्ती में जहाँ ये वंजारे लोग अपनी मस्ती में पीते-पिलाते, झूमते-गाते रहते थे । इन्हीं लोगों में से एक थी मगनी ! बीस-बाईस की अल्हड़ युवती, जिसका पति बिलासपुर भैंसें बेचने गया; तो फिर लौटा ही नहीं । मगनी नयी उमर की होकर भी काफ़ी खुले दिल की लड़की थी । पति के न लौटने पर भी, लगभग सात-आठ महीने तक उसके भीतर कोई फेरबदल नहीं हुआ । लोग किशोर के बारे में तरह-तरह की बातें करते । कोई कहता, 'उसने वहाँ नौकरी कर ली है' । कोई वैसे ही हाँक देता, 'वह किसी ग़ैर औरत के चक्कर में है' । और भी कई शुभ-अशुभ बातें होतीं । मगर वह कभी निराश नहीं हुई ।

मगर; जब होली आयी, और फाग वाले दिन शाम तक किशोर (मगनी का पति) नहीं लौटा, तो मगनी का धीरज छूट गया । वह एक रस उदासी होकर अगले दिन से ही अनमनी-सी रहने लगी । और एक-दो सप्ताह बाद ही आधी रात ढले जब अनायास मेरे द्वार की कुण्डी खटकी, देखा, तो दंग रह गया । वह एक लिफ़ाफ़ा लेकर, चेहरे पर बेहद भोलापन और बेवसी लिये हुए टूटी-टूटी आवाज़ में बोली—“ए, ओ मास्टर जी; एक काम म्हारो करज्ये म्हारा वीरा । वाँ वैरी ने चिट्ठी तो लिख दीजे म्हारी आडी सून ! माँडी

दीजे, कि घणों ही बीपार (व्यापार) कर लियो अब तो । पाछेलाँ (पीछे वालों) री मुघ भी छे: की कोने ?”

हाड़ीती क्षेत्र का होने में मुझे उसकी क्षेत्रीय भाषा पूरी तरह समझ में आ रही थी । उसके स्वर में विरह, पीड़ा, उपालम्भ, अपनत्व सब एकात्म होकर फूट रहे थे । और सबसे विशेष बात यह थी, कि इस वृत्त, और मूने, एकान्त, और अकेली कोठरी में वह कितनी निर्भीक और निश्चिन्त होकर खड़ी थी; और उमने बीरा (भाई) शब्द से सम्बोधित कर प्रथम भेंट में ही कितनी मर्यादा में बाँध लिया था ! वैसे वह घूँघट की ओट में दिन में तीन-चार बार बेमे भी दिवायी पड़ जाती थी । खिलखिलाहटे भी अक्सर मुनायी देती रही थी । मगर, आमने-सामने होने का यह पहला ही अवसर था ।

उसके कहे अनुसार मैंने पत्र लिखा, और लिफाफे पर उसी का बताया हुआ पता भी । उसके सात दिन बाद ही किशोर लौट आया, और वे फिर उसी तरह रहने लगे जैसे पहले रहते थे । बीतते रहे दिन ।

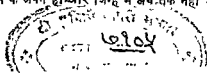
उन्हीं दिनों कुछ बदपरहेजी या असमत्तुलित भोजन के कारण एक रात मुझे दो-तीन उल्टियाँ हुई, और दिन भर बुखार भी रहा । स्कून तो प्रार्थना-पत्र भिजवा दिया । मगर, अकेले में मेरी तबीयत बहुत खराब रही थी । दिन भर कोठरी में बुखार में इधर-उधर करबटे बदतता रहा । हाथ-पाँव इतने ठूँटे-ठूँटे हो गये, कि उठकर पानी पीने की भी सामर्थ्य नहीं रही । प्रतीक्षा में था, कि कोई स्टॉफ में से आये, तो दूध-बूध की व्यवस्था हो जाय । मगर; जब रात के नौ बज गये, तो चारों ओर से निराश-सा ही गया कि अब कौन आवेगा यहाँ ?

ग्यारह बजे के लगभग फिर कुण्डी खटकी, धीरे-धीरे जाकर विस्मय के माथ द्वार खोला, तो हैरत में रह जाना पड़ा, कि किशोर और मगनी दोनों आये हैं । किशोर के हाथ में एक लुटिया है गर्म दूध की । आते ही बोला—

“घबराना नहीं मास्तर जी, हमकूँ देर से भनक मिली बीमारी की । सो देर ही गयी । अब हम दोनूँ तेरी सेवा में हैं । गुबो तो जल्दी ही तुमकूँ हकीम जी की तीन पुड़िया स्वाद की घोट के पिलायी, कि बुखार गायब !” कहकर उमने ताक में घरे काँच के गिलास में दूध भर कर मुझे पमा दिया ।

वह अशिक्षित और अस्थढ़ दम्पति रात भर मेरे मिगहाने-पैताने ऐसे बैठे जागते रहे, जैसे मैं उनका रिश्ते में कोई अपना हूँ !”

और आज जब इतने वर्षों बाद मैं जीवन की विविष्ट घटनाओं की याद करता हूँ, तो वह बंजारा दम्पति मेरे अवधान में ऐसे उतर आते हैं जैसे वे मेरे जन्म-जन्म के अपने हों और जिन्हें मैं अब तक नहीं भूला हूँ ।



## खुदा के वन्दे



डॉ० नारायणदत्त धीमाली

जब मैं अपने शिक्षक जीवन के बीने पृष्ठ को पलटता हूँ, तो एक के बाद एक कई घटनाएँ मेरी आँगों के आगे आकर मानस हो उठती हैं। पर इन सब में वह घटना, जो काश्मीर में मेरे साथ घटी, अविस्मरणीय है।

सन् १९६० के आसपास मैं स्काउट दल के साथ गर्मी की छुट्टियों में काश्मीर की राजधानी श्रीनगर गया। श्रीनगर अत्यन्त सुन्दर जगह। एक दिन पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हमें शंकराचार्य की पहाड़ी पर जाना था।

जहाँ तक मेरा अनुभव है, मैं सोचना हूँ गुलमर्ग, गिल्लनमर्ग आदि की अपेक्षा शंकराचार्य की पहाड़ी की चढ़ाई अत्यन्त विकट है। सीधी, सपाट ऊपर उठी हुई है पहाड़ी। अपने मित्रों के साथ हँसना, चुहल करना ऊपर चढ़ता गया।

आखिर कड़े परिश्रम और डेढ़-दो घण्टे की चढ़ाई के पश्चात् पहाड़ी के ऊपर हम पहुँचे। वस्तुतः वह दृश्य अचर्चनीय है। पूरा श्रीनगर वहाँ से दिखायी देता है, और जेलम के पुल तथा जेलम, इतने सुन्दर लगते हैं कि वर्णन करना कठिन है।

हम ऊपर करीब घण्टे भर तक रहे, और फिर धीरे-धीरे उतरने लगे। ऊपर चढ़ने की अपेक्षा नीचे उतरना अत्यन्त कठिन होता है, क्योंकि ज़रा-सी असावधानी हुई, और पैर फिसला... तो फिर गहरे खड्ड में..... हड्डियों तक का पता नहीं चलता, इसलिए मैं बहुत सँभल-सँभल कर उतर रहा था।

पहाड़ों पर जो पगडण्डियाँ होती हैं, वे वर्तुलाकार होती हैं, परन्तु कुछ छोटी-छोटी ऐसी भी पगडण्डियाँ होती हैं, जो सीधी नीचे उतरती हैं। इन पर से नीचे उतरना सधे हुए पहाड़ी लोगों का ही कार्य होता है।

परन्तु शीघ्रता से नीचे उतरने के लिए मैं वर्तुलाकार पगडण्डियों को छोड़

उन सीधी पगड़ण्डियों पर ही उतरने लगा। पीछे देखा, तो साथी बहुत पीछे रह गये थे, और धीरे-धीरे नीचे उतर रहे थे।

अचानक मेरा पैर फिसला, और स्पट गया। दूसरा पैर अपने-आप उठ गया और छलांगे भर गयी। पहाड़ की सीधी ढलान, और बायीं ओर संकड़ी फुट गहरा खड्ड... साक्षात् मौत मेरी आँखों के सामने नाचने लगी, और एक क्षण के क्षांश में ही यह सब कुछ मेरी स्मृति-पटल पर बिच गया। मैं छलांगे भर रहा था, और सम्भवतः इस समय ढलान पर मेरी एक-एक छलांग बीम-बीस फुट की रही होगी। दो-तीन छलांग और होती, और मैं सीधा खड्ड में होता।

पर मैं लुढ़क गया, और अपने हाथ-पैर फैला दिये। हाथ-पैर फैला देने से लुढ़कने की गति धीमी पड़ गयी। पहाड़ों पर जाने से पूर्व लूनी में एक व्यक्ति ने बातों ही बातों में एक सीख दी थी, कि यदि पहाड़ की ढलान पर लुढ़क पड़ो तो हाथ-पैर फैला दो, जिससे लुढ़कने की गति कम हो जायेगी। मुझे क्या पता था कि यही सीख मेरे जीवन में चरितार्थ होने वाली है।

मैं लुढ़कता जा रहा था, और कुछ ही क्षणों के बाद मेरा मिर एक बहुत बड़ी चट्टान में जा टकराया। इसके बाद क्या हुआ, मुझे इसका कुछ भी होश नहीं।

तीस-पैंतीस मिनट बाद जब मुझे होश आया, मैंने अपने-आप को घाट पर पड़े पाया। मैं हड़बड़ा कर उठ बैठा। मेरे गाम ही बैठा एक व्यक्ति मेरे धाव धौ रहा था।

मेरी कोहनियाँ और पैर जगह-जगह से छिल गये थे। फिर मुझे बताया गया, कि जब मैं चट्टान में टकराकर बेहोश हुआ, उस समय अद्भुत रूप से अपने घोड़े को लेकर उधर से जा रहा था। उसने सहज मानवतावश मुझे घोड़े पर लादा, और घर ले आया। उसका घर भंवरगचार्य की पहाड़ी की तनहटी में ही एक ओर जग हट कर था।

उसने घिस कर एक जड़ी का लेग मेरे घावों पर किया, और सब प्रकार से दिलासा देता रहा। मैं उठ पड़ा हुआ, और जब मैं निश्चल कर उसे पाँच रुपये देने चाहे, तो उस समय उसने जो शब्द कहे थे वे आज भी मेरे हृदय-पटल पर अंकित हैं। उसने कहा था, "क्या तुम और हम दो हैं, पर ही तो मृदा के बन्दे हैं, फिर हम दोनों के बीच यह पाँच रुपये का मोट बट्ठा में आ गया?"

मैं पानी-पानी हो गया। उसके वे शब्द मेरे शिक्षक जीवन की धरोहर हैं। आज भी जब यह घटना याद आती है, तो मोने अद्भुतता का चेहरा मेरी आँखों के सामने तैर जाता है, और उसके ने शब्द मुझ में मानवोचित गरिमा भर जाते हैं।

## अन्तिम दर्शन



शंकरलाल माहेश्वरी

सन् १९६६ फरवरी माह की अन्तिम तिथि । मध्यरात्रि समाप्त हुए अभी घण्टा भर ही हुआ था, कि शिक्षा जगत का एक मितारा अस्त हो गया । यह मितारा था गुलावपुरा की ज्ञान, गांधी विद्यालय का प्राण, लोकप्रिय प्रधानाध्यापक श्री ढावरिया ।

प्रातःकाल हुआ, सारे नगर में सनसनी फैल गयी । लोग ऐसी अविश्वस्त सूचना सुनकर ढावरिया आवास की ओर प्रस्थान करने लगे । धीरे-धीरे निवास-गृह पर भीड़ बढ़ गयी । बच्चों के दुलारे, नागरिकों के प्रिय, शिक्षितों के संरक्षक श्री ढावरिया जी का वह पंच तत्त्वों का पुतला ऊपर से नीचे लाया गया ।

श्याम वर्ण, अब मुंह पर झुरियां पड़ गयीं । गुलाबी साफ़ा तथा वह मुपड़ शरीर देखकर सभी श्रद्धालुओं के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी । रोते-विलसते नन्हें-मुन्नों की कतारें पूज्य गुरुदेव के अन्तिम दर्शन करने लगीं । सभी अपनी श्रद्धा के अश्रु समर्पित कर रहे थे उस अमर आत्मा के पार्थिव शरीर पर । शव-स्थल के समीप ही रामधुन का निरन्तर क्रम चल रहा था । शव निश्चल, निरीह परन्तु प्रभायुक्त-सा प्रतीत हो रहा था । सूतांजलि, पुष्प-मालाएँ तथा अवीर-गुलाल का ढेर निरन्तर बढ़ रहा था ।

शव के चारों ओर उनके निकटतम सहयोगी, परिवार के सदस्य तथा जिन्होंने उनके श्रीचरणों में बैठकर प्रगति का पाठ पढ़ा, वे सभी सदस्य विनीत भाव से शोकाकुल हो बैठे हुए नेत्रों से अध्रु अर्द्ध चढ़ा रहे थे ।

छात्रों की अपार भीड़, रोते-विलसते बालकों की सिसकियाँ, परिजनों का हाहाकार, साहसियों का गुरुवर के प्रति जयघोष, रामधुन की ध्वनि, सभी का ग स्वर एक अजीब-सा वातावरण प्रस्तुत कर रहा था ।

कैसे भूलूँ

जिस शरीर को वर्षों पाता-पोपा, राजीया, आज उसे पल भर निरखने पर ही आँसुओं की झड़ी लग जाती थी।

शिक्षा के अमर शहीद दाबरिया की शव यात्रा प्रारम्भ हुई। मोटर वाहन पर लाम टून के कपड़े की झालर, सून और पुष्पमालाओं का समन्वय, अवोर और गुलाब की बौछार, झूलने हरे, लाल, पीले कीले विद्यालय बेंड पर शोक धून, और सैनिक छात्रों की मलामी, उम राष्ट्रीय अमर शहीद की समृति गहन ही दिलाने लगे जो ताशकन्द से लोट भी नहीं पाया और शान्ति का दून स्वयं ही शान्त हो गया।

‘दाबरिया साहब की जय’, ‘गुरुदेव अमर हैं’, का जयनिनाद प्रारम्भ हुआ। काली पट्टी बाँधे बेंड की शोकधून बजाने वाले बैडवादक आगे-पीछे विद्यालय के १० मी० मी० दल को गम्भीर लय के साथ आगे बढ़ा रहे थे। छात्र सैनिक दल के पीछे रामधुन मण्डली और पीछे दाबरिया जी का वह पार्थिव शरीर जो एक मोटर वाहन में सजाया गया था।

पार्थिव शरीर जा रहा है। सैकड़ों नहीं हजारों, करीब चार-पाँच हजार नागरिकों का समूह उनकी विदाई में गीत नहीं, आँसू बहाता बढता जा रहा है।

ये नीली पोशाक और स्काउटिंग की पोशाक वाले बालक अपने गुरुवर की मुकुतियों पर विचारमग्न हो धीमे-धीमे आगे बढ़ रहे हैं।

मुख्य बाजार में यह डाक घर वाला राजपथ प्रारम्भ हुआ। मन्दर गति में थोड़ी देर बाद नगर के मुख्य मार्गों का भ्रमण कर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ उनके स्वानो के शिक्षक तैयार होंगे। वह था प्रशिक्षणालय का छात्रावास। गोशाला आयी। पुलिस के उस जवान ने भी शव को उरली बन्दूक टेककर सलामी दी जहाँ पुलिस स्टेशन था।

विद्यालय मार्ग प्रारम्भ हो गया। विद्यालय का मुख्य द्वार था, सरस्वती के इस अमर सेनानी का यह अमर स्मारक है। आज सभी को विलसता छोड़ यह फलाकार शिक्षक जा रहा है। संस्था के अन्यतम सहयोगी व वर्तमान प्रधानाध्यापक श्री रामचन्द्र देवपुरा शव के समीप ही विलस पड़े। सिसकियाँ ली, फिर भी न रहा गया, बोल उठे, “हे ज्योति पुत्र! तू हमें बहु ज्योति प्रदान करना जिससे यह विद्यालय प्रकाशित हो सके। हे मार्ग द्रष्टा! विद्यालय तेरे गम्मान में सून की गुडियाँ श्रद्धास्वरूप समर्पित करता है।”

समय की गति बड़ी तीव्र है। बारह के बाद एक बज रहा है। नगर परिषद्मा समाप्त हुई। विद्यालय का कृषि फार्म, जहाँ अभी कुछ दिनों पूर्व यहाँ बीज बोये गये थे, कुछ गोधे आ गये थे। फल अभी दूर थे। दाबरिया जी का अस्थि चर्म वाला वह शरीर यही लाया गया। लोगों की अपार भीड़



## धूल भरे हीरे



मिशराज ठांगानी

शहर का एक स्कूल जहाँ विभिन्न वर्गों के विद्यार्थी अध्ययन करने आते थे। स्कूल का वातावरण बहुत सुन्दर रहता था। परस्पर अध्यारको व छात्रों में स्थापित सम्बन्ध बड़े भाइयों और छोटे भाइयों जैसा था। प्राणनाम्पारक श्री भी स्वभाव के सरल व सुन्दर प्रकृति के थे। पाठशाला में बधा ९ से लेकर १०वी तक अध्ययन-अभ्यास होता था।

रमाशंकर नाम का छात्र बधा ९ में पढ़ता था। बीजे गुरुन में भीमा-भागा एक मिष्ट महका जान पड़ता था, लेकिन बधा के बहुत-से छात्र उसमें नम थे। आसक्ति अध्यारको का कोणभोजन भी वही छात्र था। बधा में बहुत निरक्षित रूप में आता था। जीम जमा कराने के समय की लेकर बधा-अध्यारक व उसके बीच प्राय गतावनी पैदा हो जाती थी। पहले से भी बहुत कमजोर था। पुत्रके योग में नहीं थी। उसका दिम और दिमाग हमेशा अक्षम रहते थे।

सर्मी के दिन थे। बड़ी धूल पड़ रही थी। ये भी उस पाठशाला के लिए मया ही था। शाल कम से शिवन पीरीय में बैठे हुआ कुछ कार्य कर रहा था। अचानक मुने बाहर खोर का हमला सुनायी दिया। अध्यारक को उसे जीम जमा कराने के बारे में हमेशा कहा करते थे, लेकिन वह अपने अक्षि-भाषकों को कभी भी नहीं कहता था। उस दिन बधा-अध्यारक ने उसे जीम जमा न करने के कारण बाहर निकाल दिया। बधा के सभी छात्र इस घटना में अत्यन्त प्रसन्न थे।

रमाशंकर इस बात से बिना रुका का दि अध्यारक श्री ने उसको अपने माते का/दियों के लक्ष्य होट-बदवार कर बधा के बहुत बड़ी-बड़ा कर निकाल दिया।



ईर्ष्या की ऐसी भावना अचानक उसके हृदय में उत्पन्न हुई कि वह अध्यापक को जोर-जोर से गालियाँ बहाने लगा ।

मैं इस प्रकार के जोरगुल को सुनकर स्टाफ रूम के बाहर आया । मैंने रमाकान्त को अपने समीप बुलाया । फिर धैर्यपूर्वक सारी घटना के बारे में पूछताछ की । बालक ने धैर्यपूर्वक मेरी बात सुनी और सारी घटना को अक्षरशः बयाना प्रारम्भ कर दिया । स्वच्छ व भोले हृदय का निश्छल बालक बान करने-करने फूट-फूट कर रोने लगा । मैंने उस बालक को उसके अभिभावकों को बुलाकर लाने की बात कही । तब तो वह और जोर से मुक्कियाँ भरने लगा । अचिरन्त अश्रु धाराएँ उसके युगल कपोल पर बहने लगीं । मेरा हृदय भी उस कण्ठजन्य दृश्य से पिघल उठा । मैंने छात्र को धैर्य व साहस बंधवाया । वचन में ही बालक के माता-पिता स्वर्गधाम पहुँच चुके थे । वह सिर्फ एक गम्बन्धी के यहाँ रहना था जहाँ उसके पालन-पोषण का मात्र बहाना ही था । कभी गाना मिलता और कभी नहीं भी । शिक्षा पर व्यय करने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

मैंने उस बालक से पूछा, "तुमने अध्यापक जी का सामना क्यों किया ?"

उसने जवाब दिया, "गुरु जी, अध्यापक जी ने मुझे मेरे मित्रों के समक्ष घसीटा और कक्षा से बाहर निकाल दिया । यदि वे अलग में मुझे फटकारते अथवा डाँटते तो ऐसी नीयत नहीं आती ।" ऐसा कहते-कहते वह फिर से मुक्कियाँ भरने लगा ।

मैंने फिर पूछा, "अब क्यों रो रहे हो ?"

उसने जवाब दिया, "गुरु जी, यह मेरी भयंकर भूल है कि मैंने क्रोध में अपने गुरु जी का अपमान कर दिया । मैं इस अपराध का भागी हूँ । मैं गुरु जी से क्षमायाचना करना चाहता हूँ । आज से मैं फिर कभी भी पाठशाला में नहीं आ सकूँगा । मैं निर्धन हूँ, असहाय हूँ और निराश्रित भी । बिना फीस के कक्षा में प्रवेश नहीं कर सकता—यह एक विडम्बना है । गुरु जी, मैं अब नहीं पढ़ सकूँगा ।"

"ओफ़.....हाय शरीबी ! बिना फीस चुकाये बालक पढ़ नहीं सकता । बिना माता-पिता का पुत्र, असहाय इधर-उधर भटकेगा । उसका भविष्य खराब होगा । नहीं...नहीं ! मैं ऐसा नहीं होने दूँगा ।" ऐसी बात मैंने सोची । गुरु पिता तुल्य होता है, बालक पुत्र तुल्य । मैं इसको अपना अनुज समझूँगा और इसके भविष्य को गर्त में जाने से रोकूँगा ।

मैंने रमाकान्त को धैर्य बंधाया और कहा, "बेटा ! आज से तुम आर्थिक दृष्टि से निश्चित हो जाओ । मैं सारी जिम्मेदारी को निवाहने का प्रयत्न करूँगा । कल से पाठशाला में नियमित रूप से आते रहना ।"

रमाकान्त मे अय शनैः-शनैः परिवर्तन होने लगा । वह नियमित रूप से बढ़ने लगा । कक्षा ६ मे द्वितीय श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ । उनके सहपाठी भी उसकी प्रगति से प्रसन्न हो उठे । १०वीं मे वह प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हुआ । पाठशाला के सभी व्यक्ति उस बालक के परिचय से प्रसन्न हुए । बालक पर वातावरण का असर पड़ता है । कुशल अध्यापक को चाहिए कि वे असीम निर्धनता मे छिपी हुई प्रतिभा को ध्यान मे रखें । बालक को निर्धन, असहाय व निराश्रित समझकर उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए ।

# मनुष्य नहीं देवता



## उदयधोर संनी

आज भी याद आ जाती है मन् १९४४ की जब मैं अध्यापक बन उदयरामसर गया ।

ज्ञाना में प्रार्थना हो रही थी, मैं तथा दो अन्य अध्यापक बातें कर रहे थे । प्रार्थना समाप्त हुई, छात्र अपनी कक्षाओं में चले गये । प्रधानाध्यापक जी पास आये, और बोले, "जब हम ही प्रार्थना में बातें करेंगे, तब वच्चों का तो कहना ही क्या है ?"

आज जब प्रार्थना में खड़ा होता हूँ, तुरन्त अपने कर्तव्य की याद आ जाती है ।

याद आती है पहले के कर्तव्यशील प्रधानाध्यापक जी की ।

उदयरामसर से श्री डूंगरगढ़ ट्रान्सफर हुआ । सवारी का प्रबन्ध कठिन था । प्रधानाध्यापक जी ने मेरी कठिनाई समझ ली । मेरा लोहे का ट्रंक आपने कान्धों पर रख लिया और बोले, "पीपा तुम ले लो, मैं भी बीकानेर चल रहा हूँ ।"

चुपचाप मैं चल पड़ा, किन्तु गंगाशहर और भीनासर के बीच सड़क पर तांगा दिखते ही मैंने पीपा सड़क पर रख दिया और निवेदन किया कि यहाँ तो तांगे मिल जाते हैं ।

वे बोल पड़े, "हम गरीब भारत के अध्यापक यदि तांगों और मोटरों का इन्तजार करेंगे तो काम कैसे चलेगा ?" वे चल पड़े, पीछे-पीछे मैं । स्टेशन पर आ, रेल के डिब्बे में सन्दूक रख बोले, "अच्छा, अब मैं जाता हूँ ।"

मैं एकटक देखता रहा, कुछ बोल नहीं सका । सोचात रहा यह प्रधानाध्यापक नहीं, बी० ए० ट्रेण्ड नहीं, मनुष्य नहीं, उदयरामसर का देवता है जो जीवन में कभी भुलाया नहीं जा सकता ।

## वह बालक !



रामसहाय विजयवर्गीय

२ जुलाई, १९६२ का दिन, नये मंत्र का आरम्भ । विद्यालय में घर लौटा तो था कि मेरे अध्यापकीय जीवन के प्रथम दिन से ही सम्पर्क में आने वाले श्री कक्षा में प्रवेश के इच्छुक विनम्र शिष्य वजरगलाल खाती के रमण होने के समाचार मिले । मैं उल्टे पाँव छात्र के पास गया तो देखा कि छात्र मृत्यु शय्या पर पड़ा है । उसकी गौरवर्णी देह काली पड़ गयी है । मुस्कानमुक्त चेहरा मुरझा गया है, नेत्र गड्ढे में धँस गये हैं एवं सदैव सचेष्ट रहने वाला बालक निश्चेष्ट, निष्क्रिय एवं शिथिल अवस्था में शय्या पर पड़ा है । सहसा नेत्रों को विश्वास नहीं हुआ किन्तु इस कटु सत्य पर विवशतः विश्वास करना ही पड़ा ।

उसकी यह स्थिति देख मैं चित्रलिखित-सा मग्न रहा, किन्तु उम विवेक-गुण्यता की स्थिति में भी उम बालक से सम्बन्धित सभी प्रगम एवं घटनाएँ सजीव होकर चलचित्र के समान मेरे नेत्रों के समक्ष तैरने लगीं

३० नवम्बर, १९५३ को जब मैं अजमेर जिले की केकड़ी तहसील के बघेरा नामक ग्राम के पास स्थित नयागाँव में बेमिक शिक्षक के रूप में अपनी नियुक्ति का आदेश लेकर पहुँचा, तो मैं नया अध्यापक था । मेरे द्वारा स्थापित नया स्कूल, नया वातावरण एवं 'नयागाँव' सभी कुछ नया था । इस नये वातावरण में स्कूल स्थापना के प्रथम दिन ही इस बालक ने अपने साथी तुलसीराम के साथ स्कूल में प्रवेश लिया । ठंड प्रामाण्य वातावरण में पले इस भोले बालक के सरल स्वभाव, सेवा भाव एवं आज्ञाकारिता ने शीघ्र ही मेरे हृदय में स्थान बना लिया । उम बालक के हृदय में भी मेरे प्रति ऐसी श्रद्धा उत्पन्न हुई कि वह अधिकांश समय मेरे सामिप्य में ही व्यतीत करने लगा एवं हर कार्य में सदैव स्वयं से भी पूर्व मेरा ध्यान रखने लगा । कई बार हादसक श्रद्धावश किये गये कामों के कारण उसे माता-पिता का बीपभाजन भी बनना

पड़ा । पर उसने मेरी मेया में कभी किसी प्रकार की उपेक्षा का आभास तक नहीं होने दिया । शालीय प्रौढ शिक्षा केन्द्र एवं ज्ञान व्यवस्था के साथ ही साथ मेरे निजी कार्यों में इस छात्र का सरासरीय सहयोग रहा । अन्य बालकों के अध्ययन में गथापठित सहयोग देना एवं इस काम में किसी भी अनुरोध स्थिति से विनमित न होना इस बालक का उत्प्रेरणीय गुण था । एक बार एक उप-निरीक्षक महोदय के साथ कैंप में रवाना होकर मार्ग के अन्य स्कूलों का निरीक्षण करने हम दोनों नयागांव पहुँचे तो स्कूल का काम विधिवत् देखाकर मैं स्वयं पुलकित था एवं निरीक्षक महोदय भी दंग रह गये । संक्षेप में यों कहना चाहिए कि उस शाम के मेरे पंचवर्षीय अध्ययन कार्य की हर प्रवृत्ति में उस बालक ने भरपूर सहयोग दिया ।

अन्ततः विद्यालय की छुट्टी के बाद अपराह्न ३ बजे उस बालक ने मेरे समक्ष ही दम तोड़ दिया और जीवन भर अपनी अविस्मरणीय स्मृति दे गया ।

इन छः वर्षों की लम्बी अवधि में जब-जब भी नयागांव गया हूँ मेरी आँगे स्कूल भवन एवं विभिन्न स्थानों पर उस सौम्य, सरल एवं शांत मुलमण्डल को ढूँढती हूँ, पर निराशा ही हाथ लगती है और हृदय नयी स्मृति लेकर लीटता है । फिर, सहसा सोचने की विध्वज होना पड़ता है कि मेरे पंचवर्षीय आवास काल के विभिन्न कार्यों में सहयोग देकर हृदय में स्थान बना लेने वाले उस छोटे से ग्राम के विद्यालय हृदयी बालक को कैसे भूलूँ ?

और भूलूँ भी क्यों ? क्योंकि यह अविस्मरणीय स्मृति ही तो इस धरती पर उस बालक का एकमात्र अवशेष है ।

## शिक्षक-जीवन का वह पहला दिन

मानसिंह वर्मा

२० जुलाई, १९६४ का वह दिन, जिस दिन मेरी नियुक्ति विद्या-भवन में हिन्दी के वरिष्ठ शिक्षक के रूप में हुई थी, मेरे अध्यापकीय जीवन के इतिहास में एक मनोरंजक दिवस के रूप में सदैव स्मरण रहेगा। सस्था की नियुक्ति-समिति के अधिकारियों ने कुछ दिन के लिए मेरे आवास का प्रबन्ध शाला के छात्रावास में किया था। छात्रावास का कॉमन रूम मुझे रहने के लिए मिला। मेरे पास बिस्तर आदि तो था नहीं, अनएव गृहपति महोदय ने विद्यार्थियों से कहकर मेरे बिस्तर का भी प्रबन्ध करा दिया था। अगले ही दिन, यानी २१ जुलाई को विद्या-भवन सस्था का प्रतिवर्ष की भांति उग वर्ष भी सज्जनगढ़ पर जन्म-दिवस मनाया जाने वाला था। अतः छात्रावास के विद्यार्थियों को रात्रि के अध्ययन से मुक्त रखा गया था। रात्रि के ६ बजे थे। मैं अपने कक्ष में बैठा अपनी नियुक्ति की सूचना से अपने सम्बन्धियों को अवगत कराने के लिए पत्र लिख रहा था। एक दुबले-पनले शरीर एवं छोटे से कद का विद्यार्थी मेरे कक्ष में घुसा और उसने बड़े ही सहज और सरल स्वभाव से मुझ से प्रश्न पूछा, "कहिए भाई माह्व, आपने कौन-सी कक्षा में दाखिला लिया है?" क्षण भर के लिए तो मैं महम-सा गया; किन्तु तुरन्त ही संभल कर बोला, "ग्यारहवीं कक्षा में।" "ओह ! तब तो हमारे ही साथी हो।" कहकर उसने चट-ते अपना हाथ मिलाने के लिए बढ़ा दिया और एक के बाद एक प्रश्नों की शहरी सगा दी। हमने पहले आप कौन-से स्कूल में पढ़ें थे ? विद्या-भवन में आप क्यों आये ? विद्या-भवन आपको कैसा लगा ? आपके पिताजी क्या काम करते हैं ? उसके इन सब प्रश्नों का उत्तर मैं अपने ढंग में दिये जा रहा था और पत्र लिखना मैंने बन्द कर दिया था। मेरी आंखों को भांपकर उसे किंचित् मात्र भी सन्देह न हो, इसीलिए मैंने बातों के प्रसंग

कैसे भूनें । १५

में ही बड़ी सावधानी से ममता दिया कि मेने ८-९ वर्ष की अवस्था में पढ़ना प्रारम्भ किया था । यह आश्चर्य होकर मेरे कक्ष से निकला और कुछ ही देर में कैरम, ताज आदि নিয়ে अपने कुछ अन्य माधियों के साथ पुनः मेरे कक्ष में आ गया । अपने सभी माधियों में उसने मेरा परिचय कराया, विशेष रूप से ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों से; क्योंकि उनका कल्पित नया सहपाठी था । रात्रि के लगभग १२ बजे तक गुली बातचीत और हंगी-मजाक के बीच ताज और कैरम आदि का खेल चलता रहा । अगले दिन सुबह मंदरा का जन्म-दिवस मनाने सभी गज्जनगड चले गये । लौटकर, शाम को मुझे शाला की समय-सारिणी मिल गयी और मैंने नोट किया कि २२ जुलाई को मेरा सबसे पहला पोरियट कक्षा ११ में ही था । मैं बड़े आत्मविश्वास के साथ कक्षा में गया और विद्यार्थियों से उनका संक्षिप्त परिचय पूछने लगा । एक विद्यार्थी नीची दृष्टि किये गकपकाता-सा बड़े ही संकोच के साथ उठा और बड़ी ही धीमी आवाज में अपना परिचय देने लगा । मैंने देखा, यह वही विद्यार्थी था जो २० जुलाई की रात्रि को मेरे कक्ष में आया था और जिससे मेरा प्रथम परिचय कक्षा ११ के विद्यार्थी के रूप में हुआ था । एक हल्की-सी मुस्कराहट मेरे चेहरे पर दीड़ गयी । मुस्कराहट को दबाते हुए मैंने उसे बीच में ही रोक कर कहा, "ओह, आप और हम तो पूर्व परिचित हैं, अब अधिक परिचय की क्या आवश्यकता है ?" वह बैठ गया और मैंने जेप विद्यार्थियों का परिचय प्राप्त कर 'हिन्दी गद्य-पद्य संग्रह' के 'सूरदास' पाठ का पहला पद—'नन्द, ब्रज लीजै ठोक बजाइ' कक्षा में पढ़ाया । कक्षा से निकलते ही पीछे की पंक्ति में बैठने वाले विद्यार्थियों ने मुझे घेर लिया और कहने लगे, "साहब ! हमारी गोलियां तो रखी ही रह गयीं ।" मैंने उत्तुकतापूर्वक पूछा, "कौसी गोलियां ? चलायीं नयों नहीं ?" उन्होंने कहा, "हम सोचते थे, हिन्दी के अध्यापक तो डीले-झाले होते हैं और फिर आप नये आने वाले थे, अतएव हमने मिट्टी की छोटी-छोटी गोलियां पीछे से कक्षा में फेंकने का निश्चय किया था ।" मुझे हँसी आ गयी और मैं उनमें से एक की पीठ थपथपाता हुआ 'फिर कल सही' कहकर अध्यापक-कक्ष की ओर चला आया । मैं सोच रहा था कि मेरा पूर्व परिचित सहपाठी भी अवश्य आकर मुझसे मिलेगा, किन्तु वह उस दिन नहीं मिला । इन अन्य विद्यार्थियों को भी कभी मिट्टी की गोलियां पीछे से फेंकने का अवसर नहीं मिला और उस कक्षा के सभी विद्यार्थी मेरे प्रिय विद्यार्थी बन गये । आज भी जब कभी उस कक्षा के विद्यार्थी, अथवा वह पूर्व परिचित सहपाठी शाला में, घर पर, सड़क पर, पुराने छात्रों की बैठकों में मिल जाते हैं तो एक विचित्र मनोरंजक समा बँध जाता है ।

## आत्मानुशासन

●  
कंचन सता

वक्षा ७ की चन्द्र छात्राओं से मारा शिक्षक वर्ग परेशान था। वे शोर मचाती रहतीं, कभी दूसरों की बातें तो कभी कागज फाटतीं। गर्मी के दिनों में और कुछ न बनता तो एक ही शॉल में दो-तीन घुमने की कोशिश करतीं। सजा देने का उन पर कोई असर नहीं पड़ता। यदि दो ममयान्तरों तक मट्टा किया जाय तो भी कोई फर्क नहीं—फाइन का प्रभाव पड़ने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

एक दिन अचानक ही मेरे दिमाग में आया कि क्यों न इन्हें ऐसा अनुभव कराया जाय कि अनुशासन में रहना ही सब के लिए हितकर है।

मैंने छात्राओं को कहा कि आज हम कहानी सुनाने की प्रतियोगिता करेंगी और सबसे पहले शान्ति हमें कहानी सुनावेगी।

सभी छात्राएँ चुप हो गयीं। शान्ति कहानी सुनाने बड़ी प्रमत्तता के साथ आरंभ करती हुई। सभी मैंने सभी छात्राओं को सम्बोधित करके कहा कि शान्ति जब तक कहानी बहे, सभी छात्राएँ अपनी-अपनी इच्छानुसार कार्य करनी रहे। छात्राएँ अपनी इच्छानुसार गिताई, बस्ताई, सुनाई तथा अन्य निश्चित कार्य करने लगीं।

शान्ति कहानी शुरू करने ही पर सभी और बोली, "यहिन जी ! ऐसे तो कहानी सुनाने में आनन्द नहीं आता है। कोई ध्यान में गिरता ही नहीं। सब अपने-अपने काम में लगी है।" "तो क्या हुआ। तुम कहानी कहनी चाहो।" मैंने कहा। बड़ी अमुविषा अनुभव करने हुए उसने अपनी कहानी पूरी की। इसी प्रकार मैंने उस टोली की अन्य सभी छात्राओं से कहानी सुनाने की कहा और सभी ने बड़ी अमुविषा अनुभव करते हुए अपनी-अपनी कहानियाँ पूरी कीं।



कहानियाँ पूरी हो जाने के बाद मैंने उन चारों छात्राओं से कहा कि वे दूसरे दिन एक नैय निगकर लायेंगी जिसका शीर्षक होगा—'जब मैंने कहानी सुनायी' ।

दूसरे दिन चारों छात्राएँ नैय निगकर लायीं । लगभग सभी का सारांश था—“जब मैंने कक्षा में कहानी कही तो छात्राएँ अपने-अपने कार्य में लगी रहीं । कोई गिलाई कर रही थी, कोई कढ़ाई, कोई बुनाई तो कोई लिखित कार्य में व्यस्त थी । कहानी कहने में बिल्कुल मजा नहीं आया—गुनने वालियों को तो आया ही क्या होगा ।” मैंने उनका निबन्ध कक्षा में पढ़कर सुनाया और साथ ही उन छात्राओं से कहा कि इसीलिए जब कक्षा में बातें होनी हैं तो न तो हम को पढ़ाने में मजा आता है न लड़कियों को पढ़ने में । अतः कक्षा में लड़कियों को चुप बैठना चाहिए । उस दिन उन चारों बालिकाओं ने प्रतिज्ञा की कि वे पढ़ाई के समय कक्षा में कभी भी बातें नहीं करेंगी ।

और उस दिन के बाद से उन छात्राओं के व्यवहार में काफ़ी परिवर्तन आ गया । प्रैतानी करना तो दूर, वे अब बातें भी नहीं करती हैं ।

उक्त घटना मुझे भुलाये नहीं भूलती जिसने मेरे सम्मुख एक व्यावहारिक नृत्य का उद्घाटन किया कि यदि छात्रों को अनुशासनहीनता से होने वाली अमुविधाओं का व्यवितगत अनुभव कराया जाय तो वे आत्ममंशोधन करने में रुचि लेने लगते हैं और स्वयं अनुशासित हो जाते हैं ।

## स्नेहीपहार

समक्षीरमिह 'करण'

बहुत पहले मैंने कहो लिखा था—

“अरे किस-किस पर दे कवि ध्यान ।

मुने किस-किस की वरण पुकार ॥”

परन्तु फिर भी कुछ घटनाएँ, कुछ कथाएँ, कुछ व्यथामें एवं कुछ जीती-जागती मानवीय प्रतिभामें मानम-पटल पर अपने-आप को कुछ दम तरह निगम आती हैं कि उन्हें मिटा पाना सम्भव ही नहीं हो पाता ।

मार्च १९६४ के पूर्वार्द्ध का एक सप्ताह । मैं सेक्रेण्टरी स्कूल, भीमाबा (अजमेर) में १०वीं कक्षा को हिन्दी का कोई पाठ पढ़ा रहा था । एक सगमग सप्तर वर्षीय पंजाबी बूढ़ सज्जन महमा कक्षा में प्रविष्ट हुए । नंगे पैर, बहुत ही सखी सगवार व कुर्मा, गिर पर जीर्ण-शीर्ण अगर सखी-से से बंधी हुई सगरी, गुरु हाथ में पतली-सी साठी और दूसरे हाथ में गेन में कुछ ही देर पहले उमाडे हुए घने के सूटे, चेहरे पर सगमग से दो दूध बडे सफेद पाग, जो कई दिनों में हजामन न बनाने के कारण बड गरे थे—समोवि वे सज्जन दाही के जीर्ण होगे ऐसा लग नहीं रहा था—यह दृष्टिदा थी उन सज्जन की ।

मैं श्यामपट के पाग सटा था । वे सीधे मेरे पाग आगे और अजीब सीटी एवं दैग्यमिथिन बाणी में बोले, “क्या आप ही वरण (वरण) माय है ?” मैं दम अवस्थात् होने वाले पश्चिम के लिए आजा में न था; किन्तु फिर भी कहना पड़ा, “हो बाबा माहव, मैं ही वरण हूँ ।” मेरे उतर में तो बूढ़ मानों मज्जित ही पा गये और बिना किसी औपचारिकता दा भूमिका के घने के घटों को मेड पर रखने हुए बोले, “माहटर माहव, इन्हे संवर करना । आरुडे हो लिये साया हूँ । अपने किमन और सगन में आरुडे वारे में बहुत कुछ सुन्ने के बाद मेरी इच्छा हुई कि आपसे दान दकर बच्चे । आपको अपनी पौर्या में

कहानियाँ पूरी हो जाने के बाद मैंने उन चारों छात्राओं से कहा कि वे दूसरे दिन एक नेग लिएकर लावेंगी जिसका शीर्षक होगा—'जब मैंने कहानी सुनायी' ।

दूसरे दिन चारों छात्राएँ नेग लिएकर लायीं । लगभग सभी का सारांश था—“जब मैंने कक्षा में कहानी कही तो छात्राएँ अपने-अपने कामों में लगी रहीं । कोई मिलाई कर रही थी, कोई कढ़ाई, कोई बुनाई तो कोई लिखित कामों में व्यस्त थी । कहानी कहने में बिल्कुल मजा नहीं आया—गुनने वालियों को तो आया ही क्या होगा ।” मैंने उनका निबन्ध कक्षा में पढ़कर सुनाया और साथ ही उन छात्राओं से कहा कि इसीलिए जब कक्षा में बातें होती हैं तो न तो हम को पढ़ाने में मजा आता है न लड़कियों को पढ़ने में । अतः कक्षा में लड़कियों को चुप बैठना चाहिए । उस दिन उन चारों बालिकाओं ने प्रतिज्ञा की कि वे पढ़ाई के समय कक्षा में कभी भी बातें नहीं करेंगी ।

और उस दिन के बाद से उन छात्राओं के व्यवहार में काफ़ी परिवर्तन आ गया । शैतानी करना तो दूर, वे अब बातें भी नहीं करती हैं ।

उक्त घटना मुझे भुलाये नहीं भूलती जिसने मेरे सम्मुख एक व्यावहारिक सत्य का उद्घाटन किया कि यदि छात्रों को अनुशासनहीनता से होने वाली अनुविधाओं का व्यवितगत अनुभव कराया जाय तो वे आत्मसंशोधन करने में मंचि लेने लगते हैं और स्वयं अनुशासित हो जाते हैं ।

बहुत पहले मैंने वहाँ लिखा था—

“अरे किस-किस पर दे कवि ध्यान ।

मुने बिग-बिग की करण पुकार ॥”

परन्तु फिर भी कुछ घटनाएँ, कुछ कथाएँ, कुछ स्वप्नार्थ एव कुछ जीनी-जागनी मानवीय प्रतिमाएँ मानस-पटल पर अपने-आप को कुछ इग मरत, बिग जाती हैं कि उन्हें मिटा पाना सम्भव ही नहीं हो पाया ।

मार्च १९६४ के पूर्वार्द्ध का एक सम्पादक । मैं सेरेण्दरी स्कूल, नौगाँवा (अलवर) में १०वीं कक्षा को हिन्दी का बोर्ड पाठ पढ़ा रहा था । एक सगमय मत्तर वर्षीय पंजाबी बृद्ध गण्डन महमा कक्षा में प्रविष्ट हुए । नये पैर, बहुत ही मैली गलबाराय कुर्ता, गिर पर जीण-शीण मगर मसीके से बेंधी हुई पगड़ी, एक हाथ में पतली-सी लाठी और दूसरे हाथ में गेरा में कुछ ही देर पहले उलाटे हुए चने के बूटे, चेहरे पर सगमय दो दो दूध दूधे सर्वद धात, जो कई दिनों से हजामत न बनाने के कारण बड़ मंटे में—क्योंकि ये गण्डन दाढ़ी के शौकीन होमे ऐसा लग नहीं रहा था—या हँसिया थी उन गण्डन की ।

मैं क्यामण्ट के पास खड़ा था । ये गीधे मेरे पास आये और अजीब मीठी एवं दैन्यमिश्रित वाणी में बोले, “बसा आप ही बरगण (बरग) मार रहे ?” ये इस अवस्था में होने वाले परिषय के लिए आका में न था; किन्तु फिर भी कहना पड़ा, ‘हाँ बाबा माहब, मैं ही बरण हूँ ।’ मेरे ऊपर मे लो बृद्ध मन्त्रों मंजिल ही था मने और दिना किसी औरषर्तकता या मुनिता के बने के वृत्तों को मेड पर रखते हुए बोले, “माहटर माहब, इन्ने मंवर बरग । आरके भी निदे साया हूँ । अपने बिगल और बगल में आरके बारे में बहुत कुछ मुन्ने के बाद मेरी इच्छा हुई कि आरके दर्शन उम्बर बने । आरको अपनी शैलरी में

कैसे बुलाता; गूद ही चला आया।" और जब घर में कुछ कटो, गूद मज्जन कमरे के बाहर जा चके थे।

चार में मुझे पता चला कि छात्रों ने और विशेष रूप में उन मज्जन के ही पुत्रों (किशन और वसन्त) ने मेरे स्वभाव का कुछ अनिश्चयपूर्ण वर्णन उनके मामने कर दिया था। उनकी धारणा चाहे कुछ भी रही हो परन्तु मैं उस स्नेह को कैसे भुलाऊँ जो उस उपहार में निहित था।

तीन दिन बाद फिर मेरे कमरे पर वही मज्जन पगारे और आग्रह करने लगे कि मैं रात्रि का भोजन उनके यहाँ करूँ। अजीब उत्तमन थी। उस श्रद्धा में सान पत्तों के भीतर कोई स्वाधर्म तो छुपा नहीं है, यही कुशंका मुझे परेशान कर रही थी। परन्तु उस वृद्ध की आँखों में कुछ ऐसा कर्ण आकर्षण था कि मुझे वह निमन्त्रण स्वीकार करना ही पड़ा।

शिव-अश्विन, पाप-पुण्य, उजला-काला, सभी को एकरूपता प्रदान करने वाली काली रात धीरे-धीरे अपना जान निछावी हुई आयी। मैं वृद्ध के घर भोजन करने पहुँच गया। उनकी पत्नी भी सचमुच स्नेह की माक्षान् देवी थी। पर वह घर.....? कच्ची दीवारों के मिरों पर टिका हुआ टूटा-फूटा छप्पर; जमीन पर फटी बोरी का टुकड़ा मेरे लिये बिछा हुआ; एक खाली की दवात को साफ करके उसमें छटाक भर धी; प्रकाश की व्यवस्था हेतु एक शीशी में बनी डालकर बनायी गयी न जाने कौन-सी नागधारी वस्तु.....यह सब कुछ मैं एक नजर में देग गया।

पीतल की थाली में एक ओर कुछ चीनी और एक ओर चमचा भर गोभी का साग और गरसों के पौधों के तनों से बनाया गया अचार। मैंने भोजन करना आरम्भ किया। मुझे बताया गया कि स्कूल के समय के अतिरिक्त जो कुछ समय मिलता था उसमें किशन व वसन्त (वृद्ध सज्जन के पुत्र) आस-पास के गाँवों में सब्जी, फल, भुने चने आदि बेच आते थे। माँ मजदूरी करती थी। वृद्ध पिता कर ही बया सकते थे। मैंने निर्धनता के मध्य जीने का वह संघर्ष देखा; अभावों के दुर्दम दैत्य को खम ठोककर चुनौती देती हुई मानव की संकल्प-शक्ति देखी। मेरे लिये सचमुच वह अनुपम दावत थी। और उसके पीछे निहित श्रद्धा, स्नेह और निश्चलता का तो भला कहना ही क्या?

इसके पश्चात् तो उस परिवार से मेरे सम्बन्ध अति घनिष्ठ हो गये। कुछ समय बाद एक दिन ऐसा भी आया जब मेरे स्थानान्तरण आदेश मुझे प्राप्त हुआ। विदाई के अवसर पर मैं इस परिवार से भी विदा माँगने गया। औपचारिकता पूरी होने के बाद वृद्ध सज्जन सहमते-से स्वर में बोले, "बेटा! मेरी इच्छा है कि मैं तुम्हारा मुख चूमकर तुम्हें विदा दूँ। हमारे यहाँ ऐसी ही परम्परा है। तुम मेरी इस इच्छा को पूरा करने में बुरा तो नहीं

मानोगे ?” मैं एक बार उलझन में पड़ गया । इतने छात्रों के सामने एक बृद्ध मुझे चूम ले तो कैसा लगेगा.....लेकिन मैंने बृद्ध की इच्छा पूरी करने की महमति दे दी और उन्होंने एक स्नेह भरा, शीतल, सुखद चुम्बन मेरे दाहिने गाल पर अंकित कर दिया । मेरा हृदय गर्व-भाव से भर गया । यह केवल मेरा अपना ही सम्मान नहीं, एक शिक्षक की समाज से प्राप्त हुआ स्नेह और आदर था । मुझे लगा कि जो कुछ मैंने प्रदान किया, इस कृतज्ञ समाज ने उतका प्रतगुणित इस चुम्बन के रूप में मुझे प्रदान किया है । यह मेरे शिक्षकत्व की ऐसी उपलब्धि थी जो आज भी मुझे सी-सी फुण्टाओं के आवेगों में जीने का सम्बल देती है । भला, यह स्नेहोपहार कोई भुलाने की बात है !

## मोटा आइन्स्टाइन



मोटा आइन्स्टाइन

मनुष्यों का नाम ही जीवन है। जीवन की भाषा निर्वाण। भाव में रहती रहती है, अनिश्चय, अनिश्चय, मोटा के लाली की तरह, जिसे रिक्तों में सुन्नर रहते हुए भी, रिक्तों में कोई मोटा नहीं होता। पटनामें होती रहती है, जीवन बसता रहता है। मॉस्को में जीवन का पटना-प्रधान होता तो स्वाभाविक है, लेकिन कुछ पटनामें डबली मॉस्को होती है कि पटना के जीवन को रिक्त न दे सकें, लेकिन हम उन्हें जीवन भर निम्न भी नहीं कर सकते।

अपने जीवन की ऐसी ही एक पटना का जिक्र में कर रहा हूँ। उन दिनों विज्ञान अध्यापक के रूप में मेरी नव नियुक्ति एक गाँव की माध्यमिक शाला में हुई थी। प्रकृति की गोद में बने हुए उस गाँव के मुख्य यातावरण ने मुझे बहुत प्रफुल्लित किया। सबसे पहले मैं जिस कक्षा में गया, वह थी छठी कक्षा। सामान्य विज्ञान मुझे पढ़ाना था। मैंने शुरू किया, "विज्ञान के इस युग में हमारे देश की सबसे बड़ी समस्या है, वैज्ञानिकों की कमी।" "महाशय जी! यह तो समस्या हुई, लेकिन आपने इसका कारण और समाधान तो बताया ही नहीं।" एक छठी कक्षा के छात्र द्वारा इतना सुन्दर व परिमार्जित प्रश्न पूछे जाने की मुझे विलकुल आशा नहीं थी।

"इसका कारण," मैंने जवाब दिया, "इसका सबसे बड़ा कारण है विज्ञान पढ़ने वालों में इस दृढ़ विश्वास की कमी कि वे वैज्ञानिक ही बनेंगे।" "लेकिन मुझ में तो यह दृढ़ विश्वास है—मैं अवश्य वैज्ञानिक बनूँगा।" मैंने उस छोटे-से छठी कक्षा के छात्र की ओर देखा जो कि दृढ़ विश्वास का प्रतीक बना खड़ा था। मुझे उसकी दृढ़ता में आइन्स्टाइन की आभा दिखलायी दी। बाद में पता चला कि वह बहुत ही मेधावी छात्र है। अपनी कक्षा में सदा

प्रथम आता है। लेकिन बहुत गरीब है। इसके पिता सखी की गाड़ी लगाने हैं। उसका नाम श्यामकृष्ण है।

मैं जब तक उस गाँव में रहा, श्यामकृष्ण का अनन्य प्रशंसक रहा। मुझे उसमें आइन्सटाईन और रामानुजम की मेधा दिललायी देती थी। मैं अक्सर कहा करता था कि वह छोटा-सा छात्र अवश्य ही देश का नाम रोशन करेगा तथा विश्व के छोटी के वैज्ञानिकों में से एक होगा। उसकी विज्ञान में विशेष रुचि थी तथा विज्ञान के नियमों को समझने की उसकी पहुँच में मैं विशेष प्रभावित था। मैंने उसका नाम ही छोटा आइन्सटाईन रख दिया था।

तीन वर्ष पश्चात् उस ग्राम में मेरा स्थानान्तर हो गया। चलते समय मैंने श्यामकृष्ण को बहुत समझाया कि वह अपनी शिक्षा चालू रखे तथा कोई दिक्कत हो तो मुझे लिखता रहे। तब वह आठवी कक्षा पाम करके नवी कक्षा में आ गया था तथा तीनो साल ६८ प्रतिशत अंक प्राप्त किये थे।

मैं नयी जगह पर आ गया। नये वातावरण ने मुझे उत्तजा लिया और धीरे-धीरे वह छोटा-सा गाँव और उस गाँव का श्यामकृष्ण मुझे विस्मृत से हो गये। करीब दस वर्ष पश्चात् मुझे उस गाँव के स्टेशन पर से, गाड़ी में गुजरने का मौका पड़ा। मेरे दिव्ये ने कुछ दूर पर, एक युवक मूँगफली व चने बेच रहा था। जबकि कुछ पहचानी-सी लगी। गौर से देखा, “अरे, यह तो श्यामकृष्ण है—छोटा आइन्सटाईन,” मैं सकंते में आ गया। मुझे लगा श्यामकृष्ण नहीं बल्कि आइन्सटाईन और रामानुजम मूँगफलियाँ बेच रहे हैं। दिल बुझ गया। मैंने आवाज दी, “अरे श्याम !” आवाज पहचान कर वह दौड़ा आया।

“श्याम ही हो न !” मैंने पूछा।

“हाँ, गुरुजी, श्याम ही हूँ।”

“लेकिन.....”

“परिस्थितियों ने मुझे मजबूर कर दिया गुरु जी,” कहते-कहते उसकी आँखें भर आयीं, “आपका छोटा आइन्सटाईन आज मूँगफलियाँ बेच रहा है।”

और मैं मोब रहा था कि हम उन्हीं कुछ महान् व्यक्तियों के बारे में जानते हैं, परिस्थितियों ने जिन्हें ऊँचा चढ़ा दिया है। लेकिन उन हजारों महान् व्यक्तियों के बारे में बिल्कुल अनजान है, परिस्थितियों ने जिन्हें पीस कर रख दिया है। मैं छठी कक्षा में पढ़ने वाले इस छोटे आइन्सटाईन एवं स्टेशन पर मूँगफली बेचने वाले युवक श्यामकृष्ण को आजीवन न भूल सकूँगा।





के चौराहे पर जूने से मारेंगा।" अन्दर-अन्दर सब अपनी बेदुश्मती से डर रहे थे, लेकिन मैं दृढ़ था कि उसकी एकमात्र सजा यही हो सकती है कि उसको स्कूल से निकाल दिया जाय।

मेरा नाम 'क' तक पहुँच गया था, और उसकी तरफ से धमकियाँ आती जा रही थी। तैर, निश्चित हो गया कि उसको शाला से निकाल दिया जाय। और ऐसा ही हुआ।

मैं बत्ताम लेकर आ रहा था और 'क' टी० सी० लेने आया था। उसने टी० सी० ले लिया था। मुझे देखते ही उसका चेहरा गुस्से से तमनमा उठा और मेरे पाम सीधा आकर बोला, "यह स्कूल है, बाहर चलिए तो आपको बताऊँ।"

सम्भावना थी कि उस गुस्से की दशा में वह मेरे साथ कुछ भी कर सकता था और यह स्वीकार करने में भी कोई बुराई नहीं है, कि 'क' का जिस्म इतना ठोस और ताकतवर था कि मैं उगते पार नहीं पा सकता था।

पता नहीं मुझ में कहीं से बल आ गया कि मैं फौरन कह बैठता, "चलो, वहाँ ले चलते हो।"

मैंने प्रधानाध्यापक से कहा, उन्होंने परिस्थिति की गम्भीरता को साफ समझकर मुझे रोका, कि मैं उसके साथ जाकर खतरा मोल न लूँ।

लेकिन मैं तय कर चुका था। वह आगे चला रहा था और मैं पीछे। वह सीट-सीट कर मुझे देगला जा रहा था और कहता जा रहा था, "चौराहा आने दीजिए, वहाँ जूता मारेंगा।"

चौराहा आया, और मैंने देखा कि वह साइकिल पर चढ़कर इस जोर से भागा जैसे मैं ही उसे मारने आ रहा था।

मैं नहीं जानता कि बाद में उसमें क्यों और कैसे यह परिवर्तन आया कि वह जब कभी भी मिलता, और साइकिल पर होता तो उतर जाता, मुझे नमस्ते करता, और फिर चढ़कर चला जाता।

अब वह दूकान पर बैठता है। उसके दो बच्चे हैं। वह उसी तरह से नमस्ते करता है और आदर देता है। लेकिन आज तक न इससे ज्यादा उसने बात की, न मैंने।

अध्यापक की जिन्दगी सराय ही तो है, विद्यार्थी आते हैं, ठहरते हैं, वनते हैं (कभी-कभी बिगड़ते हैं) और फिर अपनी-अपनी जिन्दगी के रास्ते तय करने चले जाते हैं। अध्यापक की जिन्दगी शायद एक बड़ा जवशन स्टेशन है।

## वे जिम्मेदार छात्र



फागोलाल शर्मा

यह घटना सन् १९५६ की है जबकि जनतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की रश्मि सर्वप्रथम हमारे प्रान्त में ही विकीर्ण हुई थी। मुझे यह सूचना मिली कि लगभग १० मील पश्चिम निकटस्थ ग्राम फलामादा में पंचायत समिति, हरड़ा के समस्त अध्यापकों को उपस्थित होना था। शाला में हम चार अध्यापक थे। शाला समय के अनन्तर हम सभी खाना होकर वहाँ पहुँचे और दूसरे दिन अपना वेतन लेकर वापस लौटे। हमें शीघ्रता करने पर भी आतिर विलम्ब हो ही गया था। हम मार्ग में यह कल्पना कर रहे थे कि कदाचित् विद्यार्थी आदि अब वापस घर चले गये होंगे। हमारी अनुपस्थिति में यह सब सम्भव भी था। लेकिन मैं छात्रों की ओर से कुछ आश्वस्त था, क्योंकि मेरा यह निश्चित मत है कि प्राथमिक शिक्षा रूपी उद्यान की इन पुष्प कलियों में चरित्रता, नियमितता, ईमानदारी आदि गुण रूपी सुन्दरता, मोहकता व सुगन्ध का समावेश कराने में अध्यापक का एक अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। मैं कभी-कभी प्रार्थना में बच्चों को अपने निवेदन में यह कहता था कि, “यदि कभी ऐसा भी अवसर आये कि हम में से कोई भी अध्यापक परिस्थितिवश यहाँ न हो तो आप छात्रों में इतना आत्मविश्वास होना चाहिए कि शाला की छात्र संघ कार्यकारिणी व कक्षा नायक दिन भर शाला को सुव्यवस्थित रूप से चला सके। इतना विश्वास आने पर ही हम अपनी व शाला की सफलता को सुनिश्चित कर सकते हैं।”

विचारों में डूबे हुए जब हम शाला के पास पहुँचे, तो वहाँ की नीरवता से यही विश्वास हुआ कि विद्यार्थी आकर चले गये होंगे, किन्तु ज्योंही शाला में प्रवेश किया तो हम चारों अध्यापक आश्चर्यान्वित हो गये। कक्षाएँ पूर्ण-व्यवस्थित चल रही थीं। कक्षा ५ के २० छात्रों में से ६ छात्र विभिन्न कक्षाओं में समय

विभाग चक्र के अनुसार द्वितीय बलास में गणित का अध्यापन कर रहे थे। सामने ही दैनिक उपस्थिति पट्ट में उसी दिनांक की विभिन्न कक्षाओं की उपस्थिति अंकित थी जिसमें कुल छात्र संख्या ११६ में से ११३ उपस्थित थे। हर वस्तु अपने नियत स्थान पर थी। मफाई आदि भी करा ली गयी थी, जबकि वहाँ केवल १० रुपये मासिक का एक साधारण सहयोगी कर्मचारी था जो पानी भर कर बला जाता था। इस दृश्य को देखने हेतु उस शाला की सर्वाच्च कक्षा ५ के बाहर में दो मिनट तक खड़ा रहा। बच्चों की तन्मयता व परस्पर विश्वास की भावना को देखकर हृदय में अत्यन्त आनन्दानुभूति हुई। मैंने अपने साधियों को बताया कि देखिए, यह है आप लोगों के परिश्रम का फल ! हम स्वयं वर्तव्यशील बनकर ही इन्हें अपने समान बना सकते हैं। ये बच्चे आप से ही सीखते हैं, आपका प्रयास ही इनको मुख्यवस्थित कर सका है।

इस घटना के बाद से मेरा तो यह विश्वास दृढ़ हो गया है कि अध्यापकों के सामने आयी सब समस्याएँ उनके थोड़े परिश्रम से ही हल हो सकती हैं, बशर्ते कि वे स्वयं समस्यामूलक नहीं बनें। मुझे अपने शिक्षक जीवन का यह दिन मदा याद आता रहता है।

## प्रतिज्ञा



मदनमोहन शर्मा

“बाबू जी ! खाना तैयार है,” अनिल बोला । मैंने कहा, “अभी आता हूँ, जरा तुम घड़ी में देगना कि क्या समय हुआ है ?” “अच्छा जी,” यह कहकर अनिल कमरे में घड़ी देगने चला गया और कुछ समय पश्चात् आकर बोला, “बाबू जी ! घड़ी तो बन्द है, देगो न ।” वह वास्तव में बन्द थी । मैंने शीघ्रता से स्नान आदि किया । गृहिणी ने बड़े प्रेम से गर्म-गर्म खाना परोग दिया । मैंने प्रथम टुकड़ा तोड़कर मुँह में दिया ही था कि विद्यालय की घण्टी बज उठी । मैंने थाली सत्यवती के सामने सरका दी और बोला, “बस, विश्राम-वेला में आकर लाऊँगा ।” वह बड़े आश्चर्य के साथ बोली, “क्यों ? आज क्या हो गया ? घण्टी तो प्रतिदिन लगती थी; और किसी दिन तो तुमने खाना छोड़ा नहीं । घण्टी लगने के पश्चात् विद्यालय जाते थे, आज ही क्या बात हो गयी ?”

मैं बोला, “अब मुझे समय नहीं है, बाद में बताऊँगा ।” विश्राम-वेला में जब भोजन करने आया तो सत्यवती ने उस घटना के बारे में पूछा । सत्यवती की उत्सुकता बहुत बढ़ चुकी थी । मैंने कहा, “सुनो ! कल घण्टी लगने के १५ मिनट पश्चात् विद्यालय पहुँचा था । प्रार्थना-स्थल पर सभी छात्र, अध्यापक वन्धु एवं प्रधानाध्यापक जी उपस्थित थे । मैं ही एक ऐसा दुर्भाग्य-हीन था, जो उस समूह में सम्मिलित नहीं था । मैंने बड़े संकोच एवं भयभीत हृदय से विद्यालय के अन्दर पैर रखा ही था कि प्रधानाध्यापक जी की कड़कती आवाज़ सुनायी दी, ‘तुम पर दो-दो रुपये जुर्माना कर दिया जायेगा, तुम्हारा जीवन बर्बाद हो जायेगा...’ फिर तुम रोओगे... देखो ! देर से आना अच्छी आदत नहीं है ।’

मेरा भय मुझे साकार रूप में दृष्टिगोचर होने लगा । मैंने सोचा, ‘आज

रौर नहीं... चलो... आज का आकस्मिक-अवकाश ले ले, जिससे किसी को कुछ सुननी नहीं पड़ेगी।' किन्तु न जाने क्यों चरण बढ़ते ही रहे। अवकाश बचाने का लोभ अचेतन मस्तिष्क से बढ़ने का आदेश देता ही रहा। हृदय रोक रहा था और मस्तिष्क आगे ठेल रहा था। आत्तिरकार प्रार्थना-स्थल पर चला आया। अभी तक प्रधानाध्यापक जी छात्रों को डाँट रहे थे, 'तुम विलम्ब से क्यों आये? तुम प्रतिदिन ऐसा करते हो, आज तुम पर जुर्माना लगेगा ही।' विलकुल शान्तिमय वातावरण था... इतनी शान्ति कि मुई गिरने की आवाज को सुना जा सके। इस शान्ति को भग करता हुआ छात्रों में से एक छात्र बोला, 'प्रधानाध्यापक जी! आप जो कुछ कर रहे हैं वह उचित है... मैं इसे मानता हूँ... किन्तु आपसे धृष्टता के लिए क्षमा चाहता हूँ। मैं आपसे पूछना चाहता हूँ कि हम विलम्ब से आते हैं तो हम पर सब कुछ हो जाता है और यह मास्टर जी आपके समक्ष अभी आये हैं और हमेशा ही ऐसे आते हैं।' इनके साथ कुछ नहीं होता।

छात्र का इतना कहना था कि मेरी आँखों के आगे अंधेरा छा गया, मुझे ऐसा मानुस हुआ कि मेरे पैरों से जमीन निकली जा रही है... मैंने सोचा, 'काश, यह जमीन फट जानी और मैं उसमें गिरा जाता।' इतने में ही मैंने प्रधानाध्यापक जी के द्वारा अपने नाम को सुना... मैं चौंका। जैसे सोने से जाग उठा। मैं साहम करके छात्रों के समक्ष आया और बोला, 'प्रिय छात्रों! तुम धन्यवाद के पात्र हो... तुमने मेरी आँखें खोल दी... जीवन में प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे से कुछ सीखता रहता है, चाहे वह छोटा हो या बड़ा। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि अब प्रतिदिन समय पर आऊँगा... आज के लिए प्रधानाध्यापक जी से क्षमा चाहता हूँ।'।

इतने में ही सारे छात्र भी एक साथ कह उठे, 'हम भी प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से हम भी विलम्ब से नहीं आयेंगे।' विपदा का वातावरण हर्ष में परिवर्तित हो गया। प्रधानाध्यापक जी ने मुझ से हर्ष के गाय हाथ मिलाया और बोले, 'मिस्टर शर्मा! यह सब तुम्हारे ही कारण हुआ है, धन्यवाद।'।

यह मेरे अध्यापकीय जीवन में ऐसी घटना है जिसे मैं कभी भुला नहीं सकता। प्रतिदिन घण्टी लगते ही यह घटना मुझे अपने कर्तव्य की ओर प्रेरित करती रहती है।

## चौथे चाँद का दाग



जनकराज पारोक

घटना उम्र समय की है जब मैं श्री करनपुर के एक माध्यमिक विद्यालय में प्रधानाध्यापक नियुक्त होकर आया। दरअसल छठी कक्षा के एक लड़के ने मुझे एक अजीब प्रकार की चिट्ठी-सी हो गयी थी, फिर मेरा उससे चिढ़ना भी सरासर उचित था। पढ़ाई के नाम पर वह जीरो था, कुछ पूछने पर पत्थर का नुत बनकर साड़ा रहता और शूल के नाम पर था नेचक के दासों से भरा हुआ काला-कल्टा चेहरा। उसका क्रोध भी उसकी उम्र और तेहत के अनुपात में अधिक लम्बा था। शाकी नेकर पर मैली-कुर्बली नीची कमीज पहनने से वह और भी फूहड़ लगता। तिस पर नंगे पाँव ही शाला चला आता था। रोल काल नम्बर चार होने के कारण वह बैठता भी सबसे आगे-प्रथम बैच के चौथे नम्बर पर था।

शेष समस्त छात्र होशियार और साफ़-सुधरे थे। मुझे पूरी कक्षा चाँद-सी सुन्दर लगती पर वही एक कलंक दिखायी देता। उसके गूंगेपन से मुझे कई बार ऐसा भी लगता कि यह मेरी कोई बात ही नहीं मानता, मेरी हर आज्ञा की अवहेलना करता है, इसकी दृष्टि में मेरा कोई सम्मान है ही नहीं।

खैर ! ये सब बातें ऐसी नहीं थीं जिन्हें आज तक याद रखा जाता। वार्षिक परीक्षा हुई, परिणाम सुनाया गया। उस लड़के का अनुत्तीर्ण होना तो निश्चित ही था और वह हुआ भी। सत्र समाप्त हुआ।

ग्रीष्मावकाश को गंगानगर जाकर अपने घर पर ही विताने का निश्चय था। छः बजे की बस से ही मुझे जाना था। थोड़ा ही समय शेष रहा था कि एक कमीज की याद हो आयी जो एक दर्जी को सीने के लिए दे रखी थी। कमीज लेने के लिए पहले मैं दर्जी के पास गया लेकिन उसने अपनी आदत के अनुसार वही काज-बटन का वहाना बनाया और दस मिनट की

मोहतन मांगी । मेरे लिये दर्जों के पाम अधिक टहरना सम्भव नहीं था और कमरे तक जाकर वापस उसके पाम आना भी कठिन था; अतः मैंने उसमें कहा कि किसी लड़के को छोड़ जाता हूँ, वह जल्दी ही कमीज तैयार करके लड़के के हाथ मुझे भिजवा दे ।

इसी उद्देश्य से इधर-उधर दृष्टि दोहायी तो नज़र आया वही लड़का, काला-कनूटा पत्थर की मूर्ति । और कोई दिखायी नहीं दिया, विवश होकर उसी को आवाज़ दी और समझाया कि वह जल्दी ही कमीज लेकर मुझे कमरे में ला दे—गंगानगर जाना है ।

मैंने कमरे में आकर अपना थोड़ा-बहुत जो सामान था, बाँपा, मामने की दूकान से एक बस चाय मँगवा कर पी और बग के अड्डे की ओर चला दिया । इस बीच कमीज का ध्यान बिल्कुल नहीं रहा ।

सामान अपने पाम रगड़कर मैं एक सीट पर बैठ गया । काफी देर तक इधर-उधर की सोचता रहा । एकाएक बस का इंजिन भरभराया और विचारों की शृंगला टूटी । मैंने लिडकी में बाहर झाँका—दूर रेल की पटरियों के उग पार वही लड़का भागा चला आ रहा था । अपनी पूरी शक्ति और ग्राह्य से वह भाग रहा था, लेकिन एक टॉप में लगड़ा भी रहा था । थोड़ी ही देर में वह बस के पाम आ गया । गाफ़ तोर पर मैंने देखा कि उसके दायाँ पाँव की एड़ी खून से घुरी तरह रंगी हुई थी । बायाँ पाँव की पिण्डली भी एड़ी के खून में रंग गयी थी । वह हाँफ़ रहा था । उसके हाथ से कमीज लेकर मैंने कहा, “अरे, यह इतनी जरूरी तो नहीं थी ।”

हाफ़ते हुए उसने कहा, “कमरे में तो आप भित्ति नहीं, मैंने सोचा ज़रूर अड्डे चले गये होंगे ।” एकाएक मुझे लगा जैसे उसका खून अब भी तेज़ी से बह रहा है, मेरा हृदय भर आया । मैंने पूछा, “और वह तुम्हारे पाँव को क्या हुआ ?”

“कोई काँच का टुकड़ा लग गया था ।” और बस बल पड़ी । धूल के गुबार में मैंने उन्हें वापस लौटते हुए देखा, बायाँ पैर पर सारा भार दिये हुए, धीरे-धीरे ! बदम-कदम ! ! उस दिन के बाद मैंने उसे फिर नहीं देखा ।

उसकी इस गुरु भक्ति और श्रद्धा ने मेरे मन का सारा कलुष धो दिया । अब भी जब कभी उस लड़के का ध्यान आता है तो रक्त की एक धारा मेरे हृदय तक फैल जाती है और मुझे लगता है जैसे अभी तक उसका पाँव ठीक नहीं हुआ होगा, जहम भरा नहीं होगा और खून से लथपथ एड़ी से वह आज भी वही चम रहा होगा—लंगड़ाते हुए ! धीरे-धीरे ! ! आहिस्ता-आहिस्ता ! ! !



# जंगली गुलाब

●  
नृसिंहराज पुरोहित

सन् १९५१-५२ की बात है। मैं उन दिनों जालौर जिले के एक विद्यालय में मुख्याध्यापक के पद पर कार्य कर रहा था। विद्यालय देहाती था और बालकों की संख्या भी कोई ग्रास नहीं थी। अतः विद्यालय में चपरासी केवल एक ही था। परन्तु थोड़े ही दिनों बाद उसका भी स्थानान्तरण उसके खुद के गाँव की तरफ हो गया। मेरे सामने एक समस्या खड़ी हो गयी। कारण कि विभाग ने कोई दूसरा चपरासी नहीं भेजा था। इसलिए विद्यालय की सफाई, पानी आदि की व्यवस्था में व्याघात उत्पन्न हो गया। कुछ दिन तक तो जैसे-तैसे काम चलाया गया परन्तु आखिर तंग आकर उच्चाधिकारियों को लिखना पड़ा। इस पर मुझे सलाह दी गयी कि मैं किसी स्थानीय व्यक्ति को ही इस कार्य के लिए तैयार कर लूँ तो उसकी नियुक्ति कर दी जायेगी। इससे उस व्यक्ति और विद्यालय दोनों को सहूलियत रहेगी।

मैंने आज्ञा शिरोधार्य करके ऐसे व्यक्ति की राज्ञीन शुरू की। मगर गाँव का वातावरण ऐसा था कि कोई चपरासी बनने को तैयार ही नहीं था। गाँव में कुछ बनियों के घरों को छोड़कर बाकी राजपूत, चारण, पुरोहित, राव—सब ठाकुर ही ठाकुर। उन्हें भूखों मरना कबूल, मगर खुद के गाँव में झाड़ू लगाना और पानी भरना मंजूर नहीं। कुछ संगी-साधियों को इस कार्य में मदद करने के लिए कहा तो उन्होंने दीड़धूप करके आखिर एक गर्जमन्द व्यक्ति को लाकर मेरे सामने खड़ा किया। नाम था टीकमा, जाति से राईका (चरवाहा) और उम्र २०-२५ के करीब। उसने अपनी ज़िन्दगी का अधिकांश समय जंगल में ही बकरियों के साथ बिताया था; अतः मानव समाज से वह सर्वथा अपरिचित था। उसकी शक्ल-सूरत एवं हावभाव से साफ़ जाहिर हो रहा था कि उसे घेर-घार कर लाया गया है। घुटनों तक पछेड़ी (मोटा

कपड़ा) जिसे कमर पर मोड़कर मोटी रस्सी से बाँधे हुए। स्लीवलेस अंगरखा, वह भी जगह-जगह से फटा हुआ और गाँफे के नाम पर एक लाल चिपड़ा। यही उसकी पोशाक थी। वह घबराया हुआ-मा विस्फासित नेत्रों से बारी-बारी हम सब को देख रहा था।

वातचीत करने पर शांत हुआ कि वह नौकरी करने के लिए तैयार है मगर उसकी दो शर्तें हैं। वे यदि मुझे मंजूर हों तो उसे नौकरी करने में कोई एतराज नहीं है। शर्तों के बारे में उसने पूछा गया तो उसने संकुचाते हुए बतलाया कि एक तो वह जूटे बर्तन नहीं मोजिगा और दूसरी बात यह कि वह सरकारी वर्दी नहीं पहनेगा अर्थात् हर समय अपनी इसी आदिम पोशाक में रहेगा।

मे स्वयं देहान में जाया जन्मा होने से उसकी मूल कठिनाई को भली प्रकार समझता था। जूटे बर्तन मोजिने एवं सरकारी वर्दी पहनने से उसे चिरादरी में निकाल दिये जाने का भय था। और वह भय वास्तविक भी था। मैंने उसे दोनों बातों में मृत्ति का वचन देकर भयमुक्त कर दिया।

दूगरे ही दिन में बट्ट टीकमा राईका से टीवमाराम चपरासी बन गया। विद्यालय के आवश्यक कार्य उसे बतला दिये गये और उसने धीरे-धीरे समझते हुए उन्हें सम्पन्न करना शुरू किया। अब तक दिन जंगल में और रातें चकरियों के बाड़े में बिताने के कारण हमारी दुनिया उसके लिए सर्वथा नयी थी। फिर भी उसने शर्त-शर्तें 'गिडजस्ट' होना शुरू किया। हज़ामत वगैरह बनने लगी, बातों में तेल पटने लगा, कपड़े भी गाँफ रहने लगे और कमर में मोटी रस्सी के स्थान पर चमड़े का बेल्ट आ गया। दो-चार महीनों में ही सबसे बड़ा परिवर्तन उसकी भाषा में आया। विद्यालयी जीवन में रात-दिन काम आने वाले शब्द उसने तोड़ मरोड़ कर अपनी गहूलियत के अनुसार अतिशुद्ध रूप में घट लिये और वातचीत के दौरान घड़न्ते से उनका प्रयोग करने लगा। यथा रजिस्टर को रजिटर, गिफाफे को लफाका और नमस्ते को नमन्ते कहते हुए उसे किसी प्रकार की शिस्त नहीं होती थी। मेरे साथी अध्यापक उसके इन उच्चारणों पर मूक रम लेकर हँसते थे।

लेकिन हँसने वालों ने देखा कि विद्यालय में धीरे-धीरे कुछ परिवर्तन आ रहा है। भवन एक दम साफ-सुथरा रहने लगा, प्याऊ का पानी सुबह-शाम दोनों वक्त छाना जाने लगा, लोटे-गिलास चमाचम रहने लगे, श्यामपट्ट हर रविवार को पुनने लगे और विद्यालय की प्रत्येक चीज यथास्थान करीने से मजी हुई मिलने लगी। अध्यापक बन्धु इसलिए गुंथ थे कि उनके घर के छोटे-मोटे बहुत गारे काम मुँह में निकलने ही पूरे होने लगे और विद्यार्थियों की गुंथी का तो कहना ही क्या? क्योंकि उनकी कई स्वादिष्ट यथासम्भव 'टीकमा भाई' द्वारा पूरी की जाने लगीं।

रस भणार दो पापें उम महामानव की कृपा से गृह आनन्द में वीत गये । तीसरे पाप के क्षण में एक घटना ऐसी घटी कि मैं उसे जीवन भर नहीं भूल सकूँगा ।

विशालय के सामने ही आम रास्ता था जिस पर हर समय आमद-रूपन रहती थी । वसों, टुकें और जीपें आदि भी इस मार्ग में गुजरती रहती थी । एक शाम की थोड़ा अँधेरा होने पर टीकमा मेरे पास आया और चुपचाप गड़ा हो गया । मैं कोई पुष्पक पढ़ रहा था । जब मेरा ध्यान उमकी ओर गया तो वह धीरे-धीरे मेरे पास आया और कहने लगा कि विद्यालय के सामने मार्ग में मुझे एक चीज पड़ी मिली है । मैंने हँसते हुए पूछा कि वह क्या चीज है ? उनके प्रत्युत्तर में उसने मेरे सामने मेज़ पर एक मोटा-सा बटुआ रग दिया । मैंने उसे गोलकर देखा तो उसमें पूरे १३२ रुपये और कुछ रजगानी थी । मेरे दिमाग में अचानक कई विचार काँच गये ।

"अब इसका क्या करना चाहिए ?" मैंने पूछा ।

"जैसा आप उचित समझें ।" वह बोला ।

"तुम्हें यह रुपये आम रास्ते में पड़े मिले हैं, अब तो तैरा माल है । तू उन्हें अपने घर ले जा ।" मैंने उसे टटोलते हुए कहा ।

"नहीं, हरगिज़ नहीं," वह दाँतों के बीच में जीभ दबाता हुआ बोला, "न मानूम ये रुपये किमके होंगे और खो जाने पर वह कितना दुःखी हो रहा होगा ।"


"तो फिर इनका क्या करें ?"

"इन्हें आप अपने पास रखा, कोई मालिक आ जाय तो दे दीजिए नहीं तो धमदि कर दीजिए ।"

मुझे भली प्रकार मालूम था कि वह उन दिनों भयंकर आर्थिक तंगी में था और गाँव में बनिये का कर्जदार भी था । ऐसी परिस्थिति में भी उसकी यह ईमानदारी और हृदय की विशालता देखकर मैं स्तम्भित रह गया ।

"तो क्यों न ये रुपये पुलिस थाने जमा करा दिये जायें ।" मैंने कहा ।

"जैसा आप उचित समझें ।" वह बोला ।

और रुपये पुलिस थाने में जमा करवा दिये गये । दूसरे ही दिन बटुए का मालिक एक गरीब जीप ड्राइवर पहुँचा और पैसे उसे दे दिये गये । ड्राइवर ने खुश होकर २० रुपये वतीर इनाम के टीकमा को देने चाहे, मगर "म्हारे को  " कहता हुआ वह जिस अविस्मरणीय मुद्रा में चलता बना मानस-पटल पर ज्यों की त्यों अंकित है । उस जंगली गुलाब का को आज भी तर कर रही है ।

## लौटा हुआ मनी आर्डर

सुरेश भटनागर

आज मुझ बीस रुपये का मनी आर्डर मिला है। मैं सोच रहा हूँ कि यह मनी आर्डर किंगने मेरे पास भेजा है। यद्यपि उस पर भेजने वाले का नाम तथा पता दोनों ही हैं। फिर भी प्रत्यस्मरण नहीं कर पा रहा हूँ। उस जन बदनी जाती है। मैं उस दिन कुछ भी कार्य नहीं कर पाया।

अगला दिन होता है। पोस्ट में अनेक पत्र दे जाता है। एक पत्र फिर अनजान-सा लगता है। पढ़ता हूँ—“आदरणीय गुरुजी, प्रणाम ! आपको बीस रुपये का मनी आर्डर मिल गया होगा। आपको शायद आश्चर्य होगा कि यह सब कैसे हुआ ? आपने मुझ पर बीस रुपये फाइन कराये थे। मैं दे भी न सका था। आपने ही फाइन की धनराशि जमा करायी थी। मैं अब नौकरी करने लगा हूँ और किये गये दण्ड का पहला प्रायश्चित्त यह है।”

पत्र पढ़ता जाता हूँ। अतीत के चित्र नेत्र-पटल पर अंकित होने लगते हैं। यह विद्यार्थी एम० टी० गी० का छात्र रहा है। उन दिनों शिक्षणालयास चल रहा था। मेरे मार्ग-प्रदर्शन में १२ छात्राध्यापक थे। मैं महाविद्यालय के कैम्पस में न रह कर शहर में रहता था जो कैम्पस से दो मील दूर पड़ता था। यह विद्यार्थी कैम्पस स्थित छात्रावास में रहता था। सभी छात्रों को पाठयोजनाओं में संशोधन कराने के लिए मेरे पास आना पड़ता था। परिणामतः यह छात्र स्वयं तो कभी मेरे पास आया नहीं, किसी छात्राध्यापक के हाथ पाठयोजना पुस्तक भेज दिया करता था। कुछ दिन बाद कनिष्ठ कारणों से उस छात्राध्यापक ने उसकी पाठयोजना पुस्तक तानी बन्द कर दी। यह क्रम उस समय तक चलता रहा जब कि आलोचना पाठ आरम्भ हुए। आलोचना पाठ में पूर्व सभी छात्रों की पाठयोजना पुस्तकों का पुनर्निरीक्षण हुआ। देखा गया कि किंग छात्र के कितने पाठ हुए हैं।

कितने भूलें ! ५५



## सीमा

प्रेमराज वर्मा

बान कुछ पुरानी है, लेकिन उसकी माद आज भी ताजी है। उस समय में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, विलाहा में अध्यापन कार्य कर रहा था। परीक्षा संयोजक का कार्य भी मुझे ही करना पड़ता था। परीक्षा के दिन थे। एक कक्षा में दो छात्रों ने नरल करने की चेष्टा की। वीक्षक महोदय ने उन छात्रों को डाँटा-फटकारा और उनमें से एक छात्र को कड़ी चेतावनी भी दी। मास्टर साहब की कड़ी चेतावनी और डाँट-फटकार की प्रतिक्रिया-स्वरूप भरे-पूरे परीक्षा भवन में परीक्षार्थियों के बीच यह भी मास्टर साहब के विरुद्ध आवेग में कुछ बक गया। फलस्वरूप, परीक्षापरान्त मास्टर साहब ने उन विद्यार्थी की उद्दण्डता एवं अनुशासनहीनता विषयक लिखित रिपोर्टें माननीय प्रधानाध्यापक महोदय को प्रस्तुत की। प्रधानाध्यापक महोदय का रिपोर्ट पर नाराज होना स्वाभाविक था। छात्र की उद्दण्डता के कारण वे उसे कड़ी सजा देना चाहते थे। उन्होंने तत्काल एक समिति का गठन किया जिसका मैं भी एक सदस्य था। समिति के सदस्यों को मामले की पूरी छान-बीन कर रिपोर्टें प्रस्तुत करने को कहा गया ताकि उसके आधार पर सजा निर्धारित की जा सके।

मामला कुछ उग्रता धारण करने लगा। कुछ छात्रों ने उक्त बालक को तरह-तरह से उकसाने की भी चेष्टाएँ की। इधर मास्टर साहब उसे कड़ी से कड़ी सजा दिलाने पर उतारू थे। आमतौर से यही सम्भावना की जा रही थी कि विद्यार्थी का निष्कासन हो जायेगा। हम बीच नवगठित समिति के सदस्यों ने अपने द्वाविनगत सम्पर्क से सम्बन्धित तथ्यों की प्रामाणिकता का पता लगाने का प्रयास भी किया।

निर्धारित समय पर प्रधानाध्यापक महोदय के नेतृत्व में समिति के सदस्यों

की धँकल हुई । शिकायत करने वाली मास्टर माहल भी वहीं विराजमान थे । उन्होंने बड़ी गम्भीरता से अपनी बात प्रस्तुत की । तत्परतात् छात्र को बुलाया गया । छात्र उत्तेजित नजर आ रहा था । उसकी रोषपूर्ण मुद्रा एवं विचित्र भावभंगिमा उसके आन्तरिक भावों को स्पष्ट प्रकट कर रही थी । अपना पक्ष प्रस्तुत करने हुए, उगने अपने-आप को निर्दोष प्रकट किया । टाँट-फटकार और कुपारिणामों में अद्यतन करने के बाद भी उसकी उग्रता में कोई अन्तर नहीं आया । चेहरे की तमनमाहट तद्वत् बनी रही । जब मैंने और एक अन्य साथी वन्धु ने उगत छात्र को उसकी जानीनता, प्रशंसनीय व्यवहार और उसके उज्ज्वल अनीन के गरिमामय पक्ष की स्मृति दिलाते हुए, सहानुभूति के स्वर में उनके इन निन्दनीय व्यवहार की अघाँछनीयता की चर्चा की तो बालक को कोई ऐसा तार छू गया जिससे उसके रोष का बाँध मानों अचानक बह गया । उसके तालिमागुप्त नेत्र अश्रुपूरित हो गये । उसका सारा क्रोध एकबारगी ही बह गया और अपराधी की भाँति वह अपने गुरुजन के चरणों में गिर गया और सुबक-सुबक कर रोने लगा । उठाने पर भी वह बड़ी कठिनाई से सड़ा हुआ फिर भी उसके नत नेत्र गुरु-चरणों पर ही टिके हुए थे मानों उन चरणों में उसे असीम शान्ति का अनुभव हो रहा हो । बालक की इस स्थिति से शिकायत करने वाले माननीय अध्यापक का हृदय भी ममत्व से परिपूर्ण हो गया और उनका भी सारा क्रोध मोम की भाँति पिघल कर बह गया । बालक की इस मोन अपराध स्वीकृति पर उनकी आँखों में कुछ स्पन्दन हुआ और क्षमासूचक एक बूँद नेत्र के कोने से निकल कर कपोल पर टुलक पड़ी । अब एक आदर्श अध्यापक और आदर्श छात्र का वास्तविक स्वरूप प्रकट हो रहा था । कुण्ठाग्रस्त वातावरण करुणा और ममतापूर्ण बन चुका था । प्रधानाध्यापक महोदय छात्र को आश्वस्त कर रहे थे । उसके सुबकने का क्रम जारी था । नेत्रों से बहता अश्रु-प्रवाह बालक के हृदय की कोमलता व प्रवृत्ति-परिष्कार का आभास दे रहा था । वह दृश्य आज भी भुलाये नहीं भूलता । उस दिन के बाद उस छात्र की कभी कोई शिकायत सुनने में नहीं आयी ।

आज भी जब किसी बालक की शिकायत आती है तो मेरे सामने वहीं दृश्य उपस्थित हो जाता है और मुझे उस बालक में एक निर्दोष, निष्पाप, कोमल और सम्बेदनशील हृदय झलकता हुआ दिखायी देता है जो मुझे सोचने के लिए विवश करता है कि बालक किस सीमा तक दोषी है ?

## मेरा विश्वास

रघुनाथ थोत्रिय

सन् १९६६-६७। किशोरों की एक कक्षा। सामयिक परीक्षा की उत्तर-पुस्तिकाएँ दितायी जा रही थी। कुछ देर की चहल-पहल, पक्षों की फड़फड़ाहट। सभी ने अपने प्राप्तक 'निरख-परख' लिये। कॉपियाँ वापस लौटीं। दो-तीन छात्रों ने सेवा भाव से उठकर कॉपियाँ एकत्र की। कॉपियाँ मेरी मेज पर रख दी गयी। गिनने पर ज्ञात हुआ कि कॉपियाँ कम हैं।

“यदि कुछ छात्रों के पास कॉपियाँ रह गयी हैं तो लौटा दें।” मैंने इस आज्ञा से कहा कि शेष सत्या अब पूरी हो जावेगी। पर कोई न बोला। यह क्या? कॉपियाँ कहाँ गयी? सूची से मिलान किया गया। ज्ञात हुआ कि अनुपस्थित छात्रों की तथा कुछ अन्य छात्रों की कॉपियाँ गायब हैं। पूछताछ करने पर कुछ भी ज्ञात न हो सका। सभी ने कहा, “हमने तो अपनी कॉपी दे दी।”

मैं विचण्न हो गया। क्या सारी कक्षा की तलाशी ली जाय? पर यह भी तो सम्भव है कि कॉपियाँ खिड़कियों से बाहर जा चुकी हों। यदि कॉपियाँ कक्षा में ही हैं तो भी सही अपराधी का पता लगाना सरल नहीं होगा। हो सकता है हाथ आने से पहले ही कॉपियों की दुर्दशा कर दी जाय। तो फिर क्या किया जाय?

बड़े धैर्य और साहस के साथ मैंने कहना शुरू किया, “बिद्यार्थियो! आज आपको एक मनोरंजक कहानी सुनाता हूँ।” छात्र सघाटे में थे। वे तो सोच रहे थे कि अब गुरु जी क्रोध प्रकट करेंगे। कक्षा की तलाशी होगी... और... और न जाने क्या... मैंने कहानी प्रारम्भ की—

“एक परमार्थी पुरुष थे—बाबा भारती। उनके पास एक शानदार घोड़ा था। ऐसा सुन्दर और वलिष्ठ घोड़ा कि दूर-दूर तक उसकी शोहरत थी।

एक ठाकूर था—सङ्गसिंह। उसका मन घोड़े पर आ गया। अतः उसने



एक घाल चली। एक गरीब रोगी का मेज बनाकर यह सड़क के किनारे जा बैठा। बाबा भारती घोड़े पर चढ़कर मंदिर के लिए निकले।

गड्गसिंह ने कहा, 'ओ बाबा ! मुझे गरीब बीमार को भीत भर दूर मेरे गांव पहुँचा दो, राम तुम्हारा भला करे।'।

बाबा भारती को दया आ गयी। उन्होंने बीमार को घोड़े पर बिठाया और थोड़ी दूर पैदल ही चलने लगे। यह क्या ? बीमार व्यक्ति तुरन्त सचेत हो गया। उसने घोड़े पर पैर लगायी और सगपट रोड़ाते हुए बोला, 'बाबाजी ! मैं डाकू गड्गसिंह हूँ। आपका घोड़ा आज से मेरा है।'।

बाबा भारती सन्नाटे में आ गये। अपनी जान से भी प्यारा घोड़ा आज उनसे छिन चुका था। एक क्षण रुककर उन्होंने गड्गसिंह को सम्बोधित करते हुए ऊँची आवाज में कहा, 'गड्गसिंह ! रुक जाओ। घोड़ा तुम्हारा हो चुका पर मेरी एक बात गुनते जाओ।'।

गड्गसिंह रुक गया।

'घोड़ा तो तुम्हारा ही चुका पर गड्गसिंह दग घटना का उल्लेख किसी से न करना।'।

गड्गसिंह अचम्भित होकर बोला, 'ऐसा क्यों ?'

'तुमने गरीब बनकर घोड़ा छीना है। यदि इस घटना की बात फैली तो लोग गरीबों पर विश्वास करना छोड़ देंगे।'।

गड्गसिंह कुछ सोच में पड़कर चला गया।

दूसरे दिन बाबा भारती पौ फटने से पहले जागे तो उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका प्यारा घोड़ा अपने अस्तबल में खड़ा हिनहिना रहा है।"

"विद्यार्थियो !" मैंने कहा, "अपने पन्द्रह वर्ष के अध्यापक जीवन में मैंने सदैव अपने छात्रों पर शत प्रतिशत विश्वास किया है। किन्तु जैसी घटना आज घटी उससे विद्यार्थियों पर से मेरा विश्वास सदैव के लिए हट रहा है। मुझे आशा है आप एक अध्यापक के अपने छात्रों के प्रति बने हुए विश्वास को नष्ट हो जाने से बचा लेंगे। अब आप जा सकते हैं।"

अर्द्धविकाश हो चुका था। धीरे-धीरे सारे छात्र कक्षा से बाहर जाने लगे। मैं भी कुछ चिन्तित-सा अध्यापक कक्ष की ओर बढ़ा। मुझे यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि खोई हुई सभी कॉपियाँ वहाँ मेज पर रखी हुई हैं।

मुझे छात्रों के प्रति बने हुए अपने विश्वास पर फिर भरोसा हो गया। जब भी परीक्षा की उत्तर-पुस्तिकाएँ बाँटनी होती हैं, मुझे उक्त घटना का स्मरण हो आता है। मैं सोचता हूँ—किशोरों की शाला सम्बन्धी शरारतों के कारण अनेकों होते हैं, पर उनके मन में आत्मविश्वास, प्रतिष्ठा और गौरव के भाव जगाये जायँ तो सुधार की सम्भावनाएँ बहुत बढ़ जाती हैं।

## मित्र-मण्डली

द्वारकेश भारद्वाज

जयपुर-अलवर राजमार्ग पर प्रकृति की गोद में पहाड़ियों से घिरा एक छोटा-सा गाँव है—बीलवाड़ी। इस ग्राम में एक परिवार को छोड़कर केवल सभी परिवार आर्थिक दृष्टि से मध्यम व निम्न वर्ग के हैं। 'वहाँ सबसे अधिक घर कुम्हारों के हैं जिनके बनाये हुए मिट्टी के तवे इस क्षेत्र में काफी प्रसिद्ध हैं। १९६० में बी० एड० करने के बाद मुझे वहाँ के मिडिल स्कूल का प्रधानाध्यापक बनाकर भेजा गया। कार्य भार संभालने के एक सप्ताह बाद मैं अपने दो-तीन सहयोगियों के साथ कुम्हारों की बस्ती में अनायास होकर निकला। इससे पूर्व मैं जिधर से भी इस कस्बे में निकला, अभिभावक व छात्र मेरा शिक्षक होने के नाते अभिवादन करते; लेकिन इस बस्ती में एक नहीं, दो-तीन शिक्षक जाने पर भी न कोई बालक 'प्रणाम मास्टर जी' शब्द कहता हुआ मिला और न इधर-उधर बैठे हवक्का, चिलम पीते लोगो ने ही कोई ध्यान दिया। मेरे मुख पर जिज्ञासा का भाव देखकर वही के निवासी एक साथी शिक्षक ने बताया कि ये लोग अपने पंचक काम के अलावा किसी भी काम में रुचि नहीं दिखाते। उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि १९४२ में भारत का वायसराय लॉर्ड वेवेल ५ मिनट को वहाँ पूर्ण निर्धारित क्रमानुसार आये और १९५६ में राजस्थान के राज्यपाल सरदार गुरुमुख निहालसिंह आगे जाते हुए रुके थे। आम-पास के गाँवों से भीड़ इन्हें देखने आयी थी, लेकिन बुलाने पर भी इनमें से एक भी आयोजन स्थल पर नहीं गया। उन्हें कुछेक ने उपेक्षा भाव से यह कहा कि ये लोग हमें क्या दे जायेंगे? जितना वक्त वहाँ खराब करेंगे उतने में ५-७ तवे बनायेंगे या मिट्टी की लुगदी तैयार करेंगे। जानकारी करने पर पता

एक बाग बगीचा । एक गरीब गौरी का बेश बनावर यह मड़क के किनारे जा बैठा । बाबा भार्गी घोड़े पर चढ़कर मैन के लिए निकले ।

मड़गमिह ने कहा, 'ओ बाबा ! मुझ गरीब बीमार को भीन भर दूर मेरे गाँव पहुँचा दो, नाम गुम्हारा भला करें ।'

बाबा भार्गी को दया आ गयी । उन्होंने बीमार को घोड़े पर बिठाया और घोड़े दूर पैदाय ही चलने लगे । यह क्या ? बीमार व्यक्ति गुरमत् सनेत हो गया । उसने घोड़े पर पैर नगायी और सम्पद रोड़ाने हुए बोला, 'बाबाजी ! मैं डाक मड़गमिह हूँ । आपका घोड़ा आज से मेरा है ।'

बाबा भार्गी सझाई में आ गये । अपनी जान ने भी प्यारा घोड़ा आज उनमें छिन चुका था । एक क्षण रुककर उन्होंने मड़गमिह को सम्बोधित करते हुए डैनी आभास में कहा, 'मड़गमिह ! रुक जाओ । घोड़ा गुम्हारा हो चुका पर मेरी एक बात सुनने जाओ ।'

मड़गमिह रुक गया ।

'घोड़ा तो गुम्हारा हो चुका पर मड़गमिह इस घटना का उल्लेख किसी से न करना ।'

मड़गमिह अनभिमत होकर बोला, 'मेरा क्यों ?'

'मुझने गरीब बनकर घोड़ा छीना है । यदि इस घटना की बात फैली तो लोग गरीबों पर विश्वास करना छोड़ देंगे ।'

मड़गमिह कुछ सोच में पड़कर चला गया ।

दूसरे दिन बाबा भार्गी को फटने से पहले जागे तो उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका प्यारा घोड़ा अपने अस्तबल में सड़ा हिनहिना रहा है ।"

"विद्यार्थियो !" मैंने कहा, "अपने पन्द्रह वर्ष के अध्यापक जीवन में मैंने सदैव अपने छात्रों पर शत प्रतिशत विश्वास किया है । किन्तु जैसी घटना आज घटी उससे विद्यार्थियों पर से मेरा विश्वास सदैव के लिए हट रहा है । मुझे आशा है आप एक अध्यापक के अपने छात्रों के प्रति बने हुए विश्वास को नष्ट हो जाने से बचा लेंगे । अब आप जा सकते हैं ।"

अर्द्धविकाश हो चुका था । धीरे-धीरे सारे छात्र कक्षा से बाहर जाने लगे । मैं भी कुछ चिन्तित-सा अध्यापक कक्ष की ओर बढ़ा । मुझे यह देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि खोई हुई सभी कॉपियाँ वहाँ मेज पर रखी हुई हैं ।

मुझे छात्रों के प्रति बने हुए अपने विश्वास पर फिर भरोसा हो गया । जब भी परीक्षा की उत्तर-पुस्तिकाएँ बाँटनी होती हैं, मुझे उक्त घटना का स्मरण हो आता है । मैं सोचता हूँ—किशोरों की शाला सम्बन्धी शरारतों के कारण अनेकों होते हैं, पर उनके मन में आत्मविश्वास, प्रतिष्ठा और गौरव के भाव जगाये जायें तो सुधार की सम्भावनाएँ बहुत बढ़ जाती हैं ।

## मित्र-मण्डली

द्वारकेश भारद्वाज

जयपुर-अनवर राजमार्ग पर प्रकृति की गोद में पहाड़ियों में घिरा एक छोटा-सा गाँव है—वीलवाडी। इस ग्राम में एक परिवार को छोड़कर केवल सभी परिवार आर्थिक दृष्टि से मध्यम व निम्न वर्ग के हैं। वहाँ सबसे अधिक घर कुम्हारों के हैं जिनके बनाये हुए मिट्टी के तवे इस क्षेत्र में काफ़ी प्रसिद्ध हैं। १९६० में बी० एड० करने के बाद मुझे यहाँ के मिडिल स्कूल का प्रधानाध्यापक बनाकर भेजा गया। कार्य भार संभालने के एक सप्ताह बाद मैं अपने दो-तीन सहयोगियों के साथ कुम्हारों की बस्ती में अनायास होकर निकला। इससे पूर्व मैं ज़िघर से भी इस कस्बे में निकला, अभिभावक व छात्र मेरा शिक्षक होने के नाते अभिवादन करते; लेकिन इस बस्ती में एक नहीं, दो-तीन शिक्षक जाने पर भी न कोई बालक 'प्रणाम मास्टर जी' शब्द कहता हुआ मिला और न इपर-उपर बैठे हुक्का, चिलम पीते लोगों ने ही कोई ध्यान दिया। मेरे मुख पर जिज्ञासा का भाव देखकर वही के निवासी एक साथी शिक्षक ने बताया कि ये लोग अपने पंतुक काम के अलावा किसी भी काम में रुचि नहीं दिखाते। उदाहरण देते हुए उन्होंने बताया कि १९४२ में भारत का वायसराय लॉर्ड वेवेल ५ मिनट की यहाँ पूर्व निर्धारित क्रमानुसार आये और १९५६ में राजस्थान के राज्यपाल सरदार गुरुमुख निहालसिंह आगे जाते हुए रुके थे। आस-पास के गाँवों से भीड़ इन्हें देखने आयी थी, लेकिन बुलाने पर भी इनमें से एक भी आयोजन स्थल पर नहीं गया। उल्टे कुछेक ने उपेक्षा भाव से यह कहा कि ये लोग हमें क्या दे जावेंगे? जितना वक्त वहाँ खराब करेंगे उतने में ५-७ तवे बनावेंगे या मिट्टी की लुगदी तैयार करेंगे। जानकारी करने पर पता

बला कि गत ३०-३५ वर्षों में स्कूल है लेकिन एक भी कुम्हार शिक्षित नहीं है। मैंने उसी वक़्त कहा कि यह हमारे शिक्षकों के प्रयत्नों की कमी है और मैंने चुनौती स्वीकार कर ली।

दूसरे दिन रात को अकेला इनके मोहल्ले में गया। ये लोग चौपाल में बैठे गप-शप कर रहे थे। यही ग्राम ओपभातय के बैद्य जी आ गये, उन्होंने सबको मेरा परिचय करवाया और मेरे रान को अकेले आने का कारण पूछा। मैंने उनसे कहा, "कुछ नहीं, अकेले मन नहीं लगा। सोचा, चन्दा इन्हीं लोगों में बैठे।" वे कुछ अचकनाये। मैं बैद्य जी सहित एक चबूतर पर बैठाया गया। कुछ इधर-उधर की घानचीत करने पर मैंने कहा कि आप लोग और हम अध्यापक एक ही विरादरी के हैं, तो वे चाँके। एक ने कहा, "नहीं महाराज! आपकी हम क्या बराबरी करेंगे?" मैंने कहा, "कतं इतना ही है कि आप मिट्टी को रेल-पेल और ठोक-पीटकर सुन्दर वर्तन बनाने हैं और हम बेअबल बच्चों को इन्सान।" बात सबके ममश में आयी। बैद्य जी ने भी हाँ-हाँ की। आगिर मैंने कहा कि आप लोग बच्चों को पढ़ाते क्यों नहीं? आप ही जमाने में पीछे क्यों रह रहे हैं? उन्होंने कहा कि पढ़कर हमें क्या करना है? छोटे लड़के-लड़कियाँ हमें काम में मदद करते हैं। आखिर वे किसी भी तरह तैयार नहीं हुए।

कुछ दिन बाद मैं फिर उसी मोहल्ले में गया। साथ में कुछ स्लेट्स, वस्ते तथा रंग-विरंगे चित्रों की किताबें ले गया। दो-चार बच्चों को बुलाया। चित्रों की किताब, स्लेट और वस्ता देने के पूर्व उनके सिर पर हाथ फेरा, पुचकारा, नाम पूछे और पूछा कि पढ़ोगे? बच्चे तैयार हो गये और भागे दो-चार बच्चों को स्लेट, वस्ता और किताब दिखाने। मेरा मनमयूर नाच उठा। कुछ देर में मेरे इर्द-गिर्द बहुत-से बच्चे चल रहे थे। मैं काफ़ी प्रसन्न था। बच्चे भी स्कूल में आकर खुश हुए। स्कूल में मैंने शुरू में ५-७ दिन एक पुराने अध्यापक जी को इन्हें केवल खेल खिलाने और पशु-पक्षियों व परियों की स्थानीय बोलचाल की भाषा में कहानियाँ सुनाने को कहा। बच्चे खेल और कहानियों में रम गये। छुट्टी हुई, मैं उसी मोहल्ले में इनके साथ फिर गया। इनकी माताओं और पिताओं ने विस्मय और मुस्कराहट के साथ हमारे बालगोष्ठियों और मुझे देखा। मैंने चलते वक़्त बालकों से कहा, "कल तैयार रहना। मैं इधर से ही होकर जाऊँगा। साथ-साथ चलेंगे।" दो-तीन दिन ऐसा ही किया। क़रीब एक दर्जन बच्चे मेरे अंतरंग बन गये। मुझे

इन फटेहात, लेकिन मुस्कराते ग्राम्य-बालको को साथ लेकर जाते वेहद आनन्द आता था । मिलते ही जब मैं अभिवादन करते तो मैं तपाक से कहता, “राम-राम ‘फैलू’ । राम-राम ‘बिरदू’ । और फिर तो ‘प्रणाम मास्टर जी, प्रणाम मास्टर जी’ की रट लग जाती और एक-एक बच्चा दो-दो, चार-चार बार प्रणाम करता—जब तक कि मैं प्रत्येक को व्यक्तिगत रूप से अभिवादन स्वीकार करने का उत्तर न देता ।

इस नयी चेतना से क्या शिक्षक, क्या अभिभावक सभी चकित थे । जब मैं इनके माथ निकलता तो सभी कहते कि मास्टर जी की बाल-मित्र-मण्डली आ रही है । ये बच्चे मेरे काफी आत्मीय हो गये थे । आज भी ये सब मिडिल कक्षाओं में पढ़ रहे हैं ।

मुझे इस प्रयाग में बालको का हादिक सहयोग मिला था । इस घटना का मेरे मानस पर गहरा प्रभाव है जिससे मैं बच्चों में अधिक घुलता-मिलता हूँ और इससे मुझे काफी गन्तोप होता है ।

## शिक्षक का सम्मान

हरिनंकर शर्मा

घटना सन् १९५६-५७ की है। अपनी कार्यक्षमता एवं कर्तव्यपरायणता के कारण महाराव भीमसिंह राजकीय अस्पताल, कोटा के मुख्य चिकित्सक महोदय नगर में अत्यधिक लोकप्रिय थे। उनके दो पुत्र क्रमशः कक्षा ८ व ७ में शादुल पब्लिक स्कूल, बीकानेर में अध्ययन करते थे। दोनों को गणित व विज्ञान विषय जटिल लगते थे। सामयिक जाँच में निम्न स्तर के अंकों की सूचना से चिकित्सक महोदय चिन्तित थे। शीतकालीन अवकाश व्यतीत करने दोनों छात्र कोटा आये तथा संयोगवश उनके वैयक्तिक अध्यापन का अवसर मुझ को मिला। लगभग एक मास के पाठन से दोनों में भारी सुधार हुआ तथा उक्त विषयों में अध्ययन-रुचि जागृत हो उठी। अवकाश की समाप्ति पर छात्र बीकानेर चले गये।

शर्नैः-शर्नैः अतीत में कतिपय मास लुप्त हो गये। एक दिन मेरा वर्ष भर का वच्चा निरन्तर दस्त व वमन से पीड़ित हुआ। औपधि हेतु अस्पताल पहुँचा। मुख्य चिकित्सक महोदय के कक्ष के बाहर लगभग ८० रोगी पंक्तिबद्ध अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। वे कक्ष में स्फूर्ति, किन्तु तन्मयता से निदान करके उपचार लिख रहे थे। उन्हें अत्यन्त व्यस्त पाकर मैं अन्य सहायक चिकित्सक से औपधि लिखवाकर लेता आया। किन्तु मुख्य चिकित्सक महोदय की दृष्टि मुझ पर पड़ गयी थी। उसी दिन लगभग डेढ़ बजे दोपहर मेरे घर पर मुख्य चिकित्सक महोदय अपनी कार लेकर पधारे। पूछा कि आप अस्पताल क्यों पधारे थे। मुझसे क्यों नहीं मिले? आदि। एक शिक्षक के घर पर स्वतः सुप्रसिद्ध मुख्य चिकित्सक का पदार्पण देखकर मेरे





## द्यूशन

गुरुवत्त गर्मा

काफ़ी पुरानी बात है। मन् इस समय याद नहीं आ रहा है। मेरा स्थानान्तरण व्यावर के एक विद्यालय में हुआ था। एक दिन एक छात्र मेरे घर पर आया। दुबला-पनला, कपड़े फटे हुए तथा जगह-जगह पर पैवन्द लगे हुए। लेकिन कपड़े थे गाऊ धुले हुए, व्यावर की ही सस्ती मिल की लाठी के।

मैंने पूछा, “कहो, क्या बात है?”

“गुरु जी ! मैं आपसे अँग्रेजी व गणित पढ़ना चाहता हूँ।”

“भाई ! मेरा कार्य ही पढ़ाना है।” मैंने उत्तर दिया।

कुछ देर विचार करके उस छात्र ने पूछा, “आप मुझे पढ़ाने का कितना मर्यादा माह्वार लेंगे। मैं गरीब लड़का हूँ।”

मैंने कहा, “लेकिन मैं तो द्यूशन करता ही नहीं। तुम मुझसे पढ़ना चाहते हो तो आ सकते हो। पैसे की कोई चिन्ता तुम्हें नहीं करनी होगी।”

उस छात्र ने द्यूशन करने के लिए मुझसे ज़िद् की लेकिन उसके लिए मेरा वही इन्कार। दूसरे दिन वह मेरे पास आया और मुझसे पढ़ने आने का समय पूछा। मैंने उसे समय बता दिया। वह नियमित रूप से मुझसे अँग्रेजी और गणित पढ़ने लगा। उसके साथ कभी-कभी अन्य विद्यार्थी भी आ जाते थे। हायर सेकेण्डरी में वह छात्र अच्छे नम्बरों से द्वितीय श्रेणी में पास हो गया।

बात आयी-गयी हुई। मेरा स्थानान्तरण अन्य स्थान पर हो गया। कुछ समय बाद मैं अस्वस्थ हो गया। बीमारी भयंकर थी। मैं अवकाश लेकर अपने घर व्यावर में ही अपना इलाज करा रहा था। मेरी बीमारी की खबर उस छात्र को भी लगी। वह प्रतिदिन सुबह-शाम मेरे पास आने लगा और

मेरे बहुत-से काम करने लगा । बीमारी कुछ इस प्रकार की थी कि मेरे मित्र तथा अन्य लोग मेरे पास आने से ही घबराते थे । किन्तु निपट को तो गुप्त की द्यूशन का मूल्य चुकाना था । मेरे अनेक बार मना करने पर भी वह छात्र नियमित रूप से मेरे पास आता, डॉक्टर को बुलाता, दवा देता व अन्य कार्य कर जाता ।

छात्र के घर के लोग उससे बहुत नाराज रहने और उसे मेरे पास आने से मना करते, किन्तु उस छात्र ने न मेरी बात मानी और न अपने घर वालों की ।

चार महीने तक जब तक मैं छाट पर पड़ा रहा वह इमी प्रकार मेरी सेवा करता रहा । कभी किसी दिन देर हो जाय तो हो जाय, लेकिन अनु-पस्थित वह एक भी दिन नहीं हुआ ।

मैं स्वस्थ हो गया और अपने कार्य पर चला गया । वह छात्र अब एक वरिष्ठ लिपिक है । मैं जब कभी ब्यावर जाता हूँ और वह वहाँ होता है तो उसी विनीत भाव से उपस्थित हो जाता है ।

अपने निपट के द्यूशन का मूल्य चुकाने के इस डग की मैं 'बैंगे भूतू' ?

# सहयोग

मन्दकिशोर शर्मा

मेरा हृदय बांगों उछलने लगता, बार-बार विभागीय आदेश को पढ़ता, नयी कल्पनाएँ मस्तिष्क में उभरती और अनुठा आनन्द देकर विलीन हो जाती। माथ ही, विचित्र भय भी मेरे लेता तथा तनिक-सी खिन्नता देकर चला जाता।

उचित भी था। मैं मिडिल स्कूल का एक अध्यापक ठहरा, कक्षा २ पढ़ाने वाला। अब मेरा परिवर्तन किया गया है बहुद्देशीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में। जो आदेश प्राप्ति पर मनःस्थिति थी, वह मेरे लिए बड़ी रोचक थी। कोई कहता, “बहुत बड़ा स्कूल है।” और कोई कहता, “प्रधानाध्यापक जी बहुत नट्टवट हैं।” मैंने गुना, कुछ चिन्तित भी हुआ। परन्तु मनुष्य में ‘कर्तव्य’ के प्रति यदि सजगता है, तन्मयता है तो सब बाधाएँ, असुबधाएँ स्वतः ही समाप्त हो जाती हैं।’ इस मान्यता से आत्मविश्वास बढोरा।

दो या तीन दिन के पश्चात् उपरिथित-पत्र लेकर गया इस चर्चित विद्यालय में। प्रधानाध्यापक जी से नमस्ते किया और आशा पाकर उनके सम्मुख ही कुर्सी पर बैठ गया। भय के भार से दवा-सा स्वयं को सजग रखने का यत्न कर रहा था।

“बहुत अच्छा है, आप भी हमारे परिवार के सदस्य बने।” मेरा अन्य परिचय पाने के पश्चात् प्रधानाध्यापक जी के इस वाक्य ने मुझे विश्वास की एक किरण प्रदान की। परन्तु “मास्टर साहब ! यहाँ बड़े-बड़े लड़के हैं, लेकिन डरने की कोई बात नहीं है। यदि आप भली प्रकार तैयारी करके आयेँ और पढ़ाने में रुचि लें तो सब ठीक रहेगा।” इन शब्दों ने मुझे भय, साहस तथा प्रेरणा की पावन त्रिवेणी में स्नान करा दिया। मैंने निवेदन के रूप में इतना ही कहा, “जी, खूब परिश्रम करूँगा इस ओर।”

मुझे समस्त ११वीं कक्षाएँ पढ़ाने के लिए दी गयीं तथा परीक्षा परिणाम

उत्तम रखने की आकांक्षा प्रधानाध्यापक जी ने व्यक्त की। ऐसी स्थिति में चिन्ता का और चोखिल बनना स्वाभाविक ही था। क्योंकि कहीं कक्षा २ और कहीं कक्षा ११ और फिर '६० प्रतिशत में अधिक परिणाम, बड़े-बड़े विद्यार्थी, स्ट्रिक्ट प्रधानाध्यापक जी' में सारी किसी के द्वारा कथित और कुछ निर्देशित बातें एकत्रित जो हो गयीं थीं? लेकिन 'आप यदि अच्छी नैयारी करके आयें तो सब ठीक रहेगा' ये शब्द नयी दिशा और विश्वास जगा जाते।

मैंने अपने शिक्षण को पर्याप्त रचिपूर्ण, उपादेय तथा ग्राह्य बनाने का निरन्तर यत्न किया। फलतः मुझे मेरा शिक्षक जीवन एक नया जीवन-गा प्रतीत होने लगा। मेरा क्रम चलता रहा, भाव ही प्रधानाध्यापक जी भी निरन्तर निरीक्षण करते रहे। कभी प्रत्यक्ष और कभी अप्रत्यक्ष।

एक दिन मुझे बुलाया गया; विचार आया कोई त्रुटि रह गयी होगी। परन्तु जब प्रधानाध्यापक जी ने कहा, "मास्टर साहब! विद्यार्थी आपसे मनुष्य हैं, इसलिए मैं भी।" और फिर जब यह कहा, "शिक्षक के जीवन की यही सबसे बड़ी उपलब्धि है," तो मेरी आत्मतुष्टि का ठिकाना न रहा। अतः प्रधानाध्यापक जी के शब्दों से नयी प्रेरणा और विश्वास मेरे लिये एक बहुत बड़ी प्राप्ति थी, भय दूर हुआ। विद्यालय की विविध गतिविधियों के साथ आत्मीयता का नाता इस सीमा तक पहुँच गया कि कुछ साथी मिलने ही उपनामों से सम्बोधित करने लगे थे।

सत्रान्त में प्रधानाध्यापक जी की प्रेरणा में विद्यालय के अध्यापकों ने गुप्त मतदान से तीन अध्यापकों का चुनाव पुरस्कृत करने के लिए किया। मेरा नाम भी उनमें था जिसका मुझ पर अकथनीय प्रोत्साहन तथा प्रभाव पड़ा।

"विद्यालय में छोटे-बड़े का भेद-भाव मिटकर यदि सहयोग का वातावरण बन जाय, तो प्रगति का द्वार खुल जाता है" यह सत्य यहाँ मेरे जीवन में ओर दृढ़ हो गया।

आज भी यद्यपि मैं तृतीय वेतन श्रृंखला में ही कार्य कर रहा हूँ, लेकिन यह विचारने का यहाँ अवसर ही नहीं मिलता। तत्कालीन प्रधानाध्यापक जी के माध्यम से प्राप्त उम्र प्रेरणा को—जिम्मे मेरे शिक्षक जीवन की सम्मान-जनक, आदर्श तथा प्रेरणास्पद राह दिगयी—कभी विस्मृत कर सकूँगा, यह सर्वथा असम्भव ही है।

## एक वाक्य



पद्मलाल शर्मा

अभी कुछ दिन पूर्व की बात है कि मेरे एक सहयोगी ने मुझसे पूछ ही लिया, "क्या आप बतलायेंगे कि आप इतनी शीघ्र विद्यालय क्यों पधारते हैं ?" एक बार तो मैं दंग रह गया कि क्या उत्तर दूं। पर तुरन्त ही विचार आया कि आज वह दारतान, जो इसका मूल कारण है, गुना ही डालूं। मैंने कहा, इसका राज जानना चाहते हो तो मुनो—

"आज से १० वर्ष पूर्व की बात है जब मैं एक सहायक अध्यापक के रूप में रा० ड० मा० वि०, पीसांगन में कार्य करता था। उस समय मेरे प्राधानाध्यापक श्री 'क' थे जो बहुत ही व्यवहारकुशल थे। पीसांगन विद्यालय में अधिकतर अध्यापक अजमेर के थे जो अवसर शनिवार को अजमेर चले जाते थे और फिर सोमवार को लौटते थे। एक बार जब हम सोमवार को प्रातः लौट रहे थे तब मोटर आधे रास्ते में खराब हो गयी। उधर विद्यालय के समय का ख्याल था कि समय पर पहुँचना है। पर कोई चारा न था, एक घण्टे के बाद दूसरी बस आयी और उससे हमें पहुँचना पड़ा। देर हो चुकी थी। बस स्टैण्ड से विद्यालय की ओर जब हम जा रहे थे तो हममें से एक ने कहा, 'डरने की क्या बात है ? प्रधानाध्यापक जी ज्यादा कुछ कहेंगे तो एक दिन का आकस्मिक अवकाश तो ले सकते हैं, ले लेंगे।' पर यह बात मुझे अच्छी नहीं लगी और मैंने कहा कि यह सत्य है कि हम समय पर विद्यालय में उपस्थित नहीं हो रहे हैं, अतः अपराधी हैं और अपराध स्वीकार कर लेंगे। आखिर बड़ी मुश्किल से इस बात पर सब साथियों को राजी कर पाया।

ज्योंही हम विद्यालय के दरवाजे पर पहुँचे तो प्रधानाध्यापक साहब गुस्से में खड़े हमें देख रहे थे और हम सिर झुकाये अपराधी की तरह चले जा रहे थे। मेरे सारे साथी अपनी-अपनी कक्षा में प्रवेश करने लगे तो अचानक धीरे से

प्रधानाध्यापक साहब के ये शब्द मुझे मुनायी दिये, 'तुम्हारी खातिर आज मुझे तुम्हारे स्थान पर चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को लगाना पड़ा है' ।"

यह वाक्य मेरे जीवन में एक ऐसी स्मृति बन गया है जिसे मैं कभी नहीं भूल सकता । अब कहीं पर ही क्यों न हो, मैं समय से पूर्व ही पहुँचता हूँ, चाहे वह सभास्थल हो, विद्यालय हो अथवा अन्य कोई स्थल । और अब तो समय से पूर्व ही पहुँच जाना एक आदत-सी बन गयी है ।"



छात्र (सप्लीमेंट्री) पूरक कॉपी के पन्ने अलग करके फाड़ रहे हैं। इससे उनका क्या प्रयोजन था, यह तो नहीं कहा जा सकता पर इतना स्पष्ट है कि वे बाद में यह तो कह ही सकते थे कि उनकी कॉपियों के पन्ने ही गायब हैं।

मैंने राजकुमार की कॉपी देखी। उसमें कुछ न कहा। क्रोध तो इतना आया कि उसकी पिटाई कर दूं। एक घण्टे के अन्तर पर मैंने उसे एक पृथक् कमरे में बुलाया। उसके सामने उसकी मूल उत्तर-पुस्तिका रख दी। मैंने उससे कहा, "राजकुमार, इसे फाड़ तो।" मैंने सोचा कि वह सकुचायेगा और पिड़गिड़ायेगा, पर ऐसा उसने कुछ न किया। उसने उसी क्षण कॉपी ली और उसकी बिन्धी-बिन्धी कर दी। मेरे १६ वर्ष के अध्यापकीय अनुभव को अजीब-सी टेम लगी। मनोवैज्ञानिक रीति का फल भी विपरीत निकला। मैं प्रधानाध्यापक के पास गया। वे भी स्तम्भित हो गये।

छठे घण्टे में मैं फिर उसी कक्षा में गया। मैंने सभी छात्रों से प्रश्न किये, पर राजकुमार से कुछ न कहा। मैं मात्र उसका मनोभाव ही अध्ययन करता रहा। अन्य छात्रों की भाँति वह जानता था कि मैं क्रोधित होऊँगा और उसे पीटूँगा। पर मैंने ऐसा कुछ भी नहीं किया। इसका प्रभाव जादू का सा हुआ। दस घण्टे के पश्चात् राजकुमार प्रधानाध्यापक-कक्ष में आया जहाँ मैं भी बैठा हुआ था और जोर-जोर से रोने लगा। बार-बार क्षमायाचना करने लगा। "साहय, आप मुझे पीट लेते तो मैं समझता कि मेरे अपराध की सजा मिल गयी, पर आप तो मुझ से बोलते ही नहीं। आपने तो मेरा जीना ही भारी कर दिया।" मैंने उसके साथ पूरी सहानुभूति दिखायी। उसने अन्य अपराधी छात्रों के नाम भी बता दिये। उसे मैं नित्य अच्छी-अच्छी पुस्तकें देने लगा। वह भी दिन-ब-दिन और अधिक मेरे निकट आता गया। कुछ वर्ष हुए वह बी० ए० पास कर चुका था। अब वह कहाँ है, पता नहीं। पर उसके साथ जो मनोवैज्ञानिक व्यवहार किया गया और सहानुभूति दिखायी गयी, उसका प्रभाव स्थायी रहा।

ऐसे अवसर पर अध्यापक अपना मानसिक समुत्थन बनाये रखें और परिस्थिति की गम्भीरता को समझें अन्यथा प्रभाव प्रतिकूल ही होता है।



## वालिका की सत्य निष्ठा



सीताराम स्वामी

एक छोटी-सी वालिका की सत्य निष्ठा एवं एक अधिकारी के न्यायपूर्ण निर्णय को मैं आज तक नहीं भूल सका। घटना सन् १९५५ की है जब मेरा स्थानान्तर चुरू जिले के एक ग्राम भूलानार से राजकीय माध्यमिक विद्यालय, पड़िहारा में हुआ था। मेरे पड़िहारा आगमन के पूर्व ही कुछ अध्यापकों ने किसी अन्य अध्यापक के भुलावे में मेरे बारे में रटाफ तथा ग्राम में यह अफवाह फैला दी कि आने वाला अध्यापक कुर्यात वदमाण है। इसके फलस्वरूप एक सहायक अध्यापक के अतिरिक्त मेरी योग्यता सर्वाधिक होते हुए भी प्रधानाध्यापक जी ने मुझे सिर्फ कक्षा १ से ४ तक के उद्योग एवं खेल के ही पीरियड्स दिये तथा ग्राम वाले ऐसे अवसर की प्रतीक्षा करने लगे जिससे वे मेरे विरुद्ध आरोप लगाकर मेरा स्थानान्तर अन्यत्र करवा सकें। उन्हें यह अवसर भी शीघ्र ही मिल गया। एक दिन, जबकि मैं कक्षा ३ के विद्यार्थियों को 'कांजी कोड़ा' खेल खिला रहा था, तब खेल का आदर्श प्रस्तुत करते समय एक पतली टहनी (जिसका कोड़ा बनाया गया था) मेरे हाथ से एक जैन वालिका के लग गयी। घर पर उसकी माता के पूछने पर उसने सत्य घटना का वर्णन कर दिया। पर ग्रामवासी तो येन केन प्रकारेण मेरे विरुद्ध शिकायत करने का अवसर ढूँढ रहे थे, अतः कौरन ही एक प्रतिनिधि मण्डल वालिका को साथ लेकर विद्यालय निरीक्षक, चुरू के कार्यालय में जा पहुँचा और मेरे विरुद्ध सिर्फ वालिका को पीटने का ही नहीं, बल्कि दुश्चरित्रता का भी दोषारोपण किया। निरीक्षक महोदय श्री बी० दयाल जी गुप्त, जो शिक्षा विभाग के अनुभवी एवं योग्य अधिकारी रह चुके हैं, मेरे चरित्र के बारे में पूर्ण आश्वस्त थे। अतः उन्होंने वालिका को अपने समीप बुलाकर सत्य वर्णन करने को कहा। वालिका ने लाख सिखाये जाने पर भी अपने गुरु के विरुद्ध सत्य वयान करने का ही

निष्पत्ति किया और कहा कि खेल में लगी है। इस पर विद्वान् अधिकारी ने प्रतिनिधि मण्डल को झिड़क कर वापस लौटा दिया तथा मेरे विरुद्ध कोई कार्यवाही नहीं की।

प्रधानाध्यापक जी ने जो भी कार्य मुझे दिया मैंने लगन एवं निष्ठा के साथ पूरा किया। आखिर सच्चाई प्रकट हुई। उन्हीं प्रधानाध्यापक जी ने मुझे सर्वोच्च कक्षाएँ पढ़ाने की दी तथा उनका एवं स्टाफ का मैं एकमात्र विश्वासपात्र बन गया। कुछ ही दिनों में जो ग्रामवासी मेरे विरुद्ध अभियोग लेकर गये थे, उन्होंने भी मुझ में क्षमा माँगते हुए अपनी गततफहमी स्वीकार की।

इस घटना से मैंने तीन शिक्षाएँ ग्रहण कीं : (१) बालकों का हृदय निश्छल और शुद्ध होता है, (२) सत्य, निष्ठा एवं लगन से किया गया कर्तव्यपालन कभी अकारण नहीं जाता; तथा (३) अधिकारियों की सद्भावना समय पर काम आती है।

मैं आज भी इस घटना से प्रेरणा ले रहा हूँ।

## बालिका की सत्य निष्ठा



श्रीमान्दर श्यामा

एक शीर्षी की बालिका की सत्य निष्ठा एवं एक अधिकारी के न्यायपूर्ण निर्णय को मैं याद रख नहीं भूल सका। भटना मन् १९२४ की है जब मेरा बाल्यभार शुरू होने के एक साल पुराने में राजकीय माध्यमिक विद्यालय, बालिका में हुआ था। मेरे पिछ्छाया आसमन के पूर्व ही कुछ अध्यापकों ने किसी अन्य अध्यापक के भूताने में मेरे बारे में स्याफ तथा घाम में यह अफवाह फैला दी कि आगे वाला अध्यापक कुरपात परमाण है। इसके फलस्वरूप एक सहायक अध्यापक के अनिर्दिष्टा केरी योग्यता सर्वाधिक होते हुए भी प्रधानाध्यापक को ने मुझे कक्षा १ में उनका के उद्योग एवं मेरा के ही पीरियड्स दिये तथा घाम करने केले अवसर की प्रतीक्षा करने लगे जिससे के मेरे विरुद्ध आरोप समाकर मेरा स्थानान्तरण अल्पक करवा मके। उन्हें यह अवसर भी क्षीघ्र ही मिल गया। एक दिन, जबकि मैं कक्षा ३ के विद्यार्थियों को 'काजी कोडा' देख दिखा रहा था, तब मेरा का आदर्श प्रस्तुत करते समय एक पतली (हिमका बोझ बनाया गया था) मेरे हाथ से एक जैन बालिका के सिर पर पड़ उसकी माता के दूराने पर उसने सत्य घटना का वर्णन पर घामवासी तो मेरा केन प्रकारेण मेरे विरुद्ध निकालत हूँ रहे थे, अतः फोरन ही एक प्रतिनिधि मण्डल का विद्यालय निरीक्षक, चुन के कार्यालय में जा पहुँच बालिका को पीटने का ही नहीं, बल्कि धुस्परि- निरीक्षक महोदय श्री श्री० दयाल जी गुप्त, योग्य अधिकारी रह चुके हैं, मेरे परि- उन्होंने बालिका को अपने समीप पु- ने माग मिताये जाने पर भी

मेन तथा फूल-पत्तियों की चारीक कड़ाई का जीता-जागता नमूना देख बापू यड़े पमन्न हुए और उन्होंने मुझे धन्यवाद दिया । मैंने प्रार्थना की कि यह चदर मैंने आपके लिए ही बनायी है अतः आप इसे अपने दैनिक उपयोग में लीजिए । बापू शट-से बोल उठे, "यह तो बड़ी मूल्यवान है, इससे तो हरिजनो का उद्धार होगा ।" साथ ही उन्होंने युवको मे हस्तकला के प्रति प्रेम को जगाने के महत्त्व पर प्रकाश डाला । बापू के आशीर्वाद से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ । उन्हीं की प्रेरणा से उत्साहित होकर आज मैं ग्राम में रहता हुआ एक कर्तव्यनिष्ठ, कर्मठ अध्यापक की तरह सहर्ष अध्यापन कार्य सम्पादन कर रहा हूँ ।

एक दूसरी घटना है २८ नवम्बर, १९३७ की । पण्डित जवाहरलाल नेहरू का भी गोहाटी आगमन हुआ । उनके लिए मैंने एक मानपत्र बनाया जिसमें पण्डित जी की फोटो सोना, चांदी जरी, तारा, पुलिसन रंग-बिरंगे रेशम और मृगा सूता से बनायी थी । फोटो के चारो ओर 'भारतीयो का हृदय-सम्राट् पं० जवाहरलाल नेहरू' लिखा हुआ था । जरी और रेशम के अक्षरों से लिखे रंग-बिरंगे डिजायनों के फूल-पत्तियों वाले उस मानपत्र को भेंट करने के लिए निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचा तो दर्शनार्थ आयी अपार भीड़ को देख एक क्षण असमन्वय में पड़ गया । पुलिस का कड़ा इन्तजाम देखकर मेरी तो अकम दग रह गयी, धैर्य छूट गया, होशला पस्त हो गया । मैं इस उधेड़-बुन में विकर्तव्य-विमूढ़-ना था कि आशा की क्षीण आलोक रेखा दिखायी दी । मैं शीघ्र ही उग दरवाजे की ओर लपका जो पण्डित जी के आने-जाने के लिए रास तीर से बनाया गया था और जहाँ पुलिस का कड़ा पहरा था । दरवाजे के पास गया तो यह देखकर कि पुलिस सन्तरी उस रास्ते से किसी को भी नहीं जाने देते हैं, मेरी शारी हिम्मत गायब हो गयी, अब यह निश्चित हो गया कि आज इस एकात्मक भरी भीड़ में होकर मानपत्र भेंट करना असम्भव ही नहीं, नितान्त असाध्य एवं दुष्कार है । किन्तु दर्शन करने की लगन ने मुझे हतान न होने दिया । मन आनन्द विभोर हो उठा था । पं० नेहरू के निकट शीघ्र पहुँचने की आशा थी । फौरन एक अज्ञात शक्ति की प्रेरणा मिली । बिजली की रोशनी में चकाचौंध करने वाले मानपत्र को हाथ में ले, गेट पार कर गया । सन्तरी पुकारता रहा, "बहाँ जा रहे हो ? आगे..." इस रास्ते से मन जाइए, मत जाइए ।" परन्तु मैं तो बरसात के पहाड़ी नाते की तरह बढ़ता हुआ पं० नेहरू के सम्मुख जा, मानपत्र भेंट कर एक ओर मूक लडा हो गया ।

मानपत्र को ले, उमे देग-देवकर पण्डित जी हँसते रहे और हस्यकला पर मुग्ध होकर कहने लगे, "इस कलामय मानपत्र को देखने में ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रकृति की मनोरम छटा जरी और रेशम के रंग-बिरंगे घागों

में निपट कर निगल आयी हो। मास्टर ! मे तुम्हारी हस्तकला के लिए फलफाट देना हैं। निगमोंके अन्तर शिक्षण वर्य अपने आधुनिक कैमन की छोड़ परिश्रम करने, हस्तकला तथा शिल्पकला सीखने में लग जाय तो भुगों मरने के बजाय पैर भर गाने की मिन मकता है और भारत की प्राचीन कलाओं का भी पुनरुद्धार हो जाय।” (विश्वमित्र दैनिक पत्र, कलकत्ता, दिनांक २६ नवम्बर, १९३७)

मेरे जीवन की एक ही प्रकार की ये दो घटनाएँ ऐसी है जिनको मैं भूल नहीं सकता। स्वर्गीय पण्डित जी के उपर्युक्त शब्द आज के सन्दर्भ में कितने उपयुक्त है जिनके महत्त्व को यदि आज का नवयुवक समझ कर चले तो पूज्य बापू के आदेश, 'ज्ञान य कर्म' का समन्वय हो सके और छात्रों में कौन्सी अनु-प्राप्तनहीनता व बेकारी समूल नाश होकर उनका भविष्य उज्ज्वल हो जाय, और बापू के रामराज्य का स्वप्न भी पूरा हो जाय जो कि हमारा परम कर्तव्य है।

मेरे शिक्षक जीवन की ये प्रेरणाप्रद घटनाएँ ऐसी है जो भुलाये से भी नहीं भुलायी जा सकती।

## स्नेह की अमिट रेखाएँ



तेजसिंह 'तरुण'

मैं सन् १९६२ में विद्या निकेतन सेकेण्डरी स्कूल में अध्यापक था। परी-  
क्षोपरान्त कुम्भलगढ कैंप के लिए विद्यार्थियों के साथ मैं भी गया। वहाँ से  
सानन्द लौटते समय हम नाथद्वारा ठहरे। एक रात्रि को सब ही विद्यार्थी  
और हम अध्यापकगण बाजार में कुछ खरीद हेतु निकले। लगभग सब ही ने  
कुछ न कुछ खरीदा और लौटकर जब वापस विश्राम-स्थल पर आये तो सब  
ही अपनी-अपनी खरीदी हुई वस्तुओं का प्रदर्शन कर रहे थे। अध्यापकों ने भी  
विद्यार्थियों की माँग पर बाजार से खरीदी हुई वस्तुएँ दिखायी। मैं चुपचाप था।  
वैसे मैंने भी कुछ वस्तुएँ खरीदी थी, परन्तु तुरन्त बताया नहीं थी। इस पर  
एक विद्यार्थी ने कहा, "गुरुजी (हमारे यहाँ अध्यापक को गुरुजी ही बोलते थे)  
आपने भी तो कुछ चूड़ियाँ आदि खरीदी होंगी?" उस विद्यार्थी का यह पूछना  
पता नहीं मुझे क्यों अच्छा नहीं लगा? मैं शीघ्र ही आवेश में आ गया और  
मैंने उनके गाल पर दो-चार तमाचे घर दिये। यही नहीं, जब वह बीच में  
कुछ और बोला तो मैंने उसके दो-एक लातें भी जड़ दी। सबके सब मेरे इस  
कृत्य को देखते रहे। साथ वाले अध्यापक भी मौन थे, कुछ बोले नहीं। वह  
विद्यार्थी जोर-जोर से रोने लग गया पर मेरा गुस्सा अभी भी ठण्डा नहीं हुआ  
था। जब सब सो गये तो वह विद्यार्थी रात्रि को विश्राम-स्थल से निकल भागा।  
यह बात मुझे रात्रि को करीब साढ़े ग्यारह बजे मालूम हुई। मैं अब भी  
शरत्कार गुस्से में बोला, "जाने दो बदमाश को, आ जायेगा घूमना-  
फिरता।"

कैंप से सम्बन्धित प्रमुख अध्यापक ने भी अभी तक मुझे मेरे द्वारा हुए  
इस कृत्य पर कुछ नहीं कहा। मगर वह शेष अध्यापकों के साथ उसे खोजने  
निकले। रात्रि भर नाथद्वारा छान डाला। वह विद्यार्थी नहीं मिला। सुबह

होते-होते उस पितामही को उदयपुर जाने वाली रग में वापस लाये । अब मेरा गुन्या प्रान्त ही चला था । मैंने जब उसे पुनः देखा तो मेरे मन में कल की घटना पर दुःख हुआ, मगर अभी भी मेरा यह साहस नहीं हुआ कि मैं उससे धमा मांग लूँ या खान ही कर लूँ । हल्का-सा अहं मेरे मन को भटकाये हुए था ।

दूसरे दिन हम उदयपुर पहुँचे । कुछ ही दिनों बाद वार्षिक परीक्षा प्रारम्भ हुई । इतिहास विषय की काँपियाँ मेरे पास आयीं । पुनः नाथद्वारे वाली घटना मस्तिष्क पर ज्यों की र्यों उतर आयी । कुछ क्षणों के लिए मन में वैमनस्य ने जन्म लिया । कम अंक देकर उस छात्र को फेल करने की बात मेरे मन में पैदा हुई, परन्तु परमपिता परमेश्वर ने हमारे ही क्षण मद्बुद्धि दी और मुझे इस कुकृत्य ने रोका और उस छात्र के प्रति होने वाले अन्याय से मेरे हाथों को नहीं देगा । मैंने गुप्ती ने उसे अच्छे अंक देकर पास किया ।

परीक्षा समाप्ति के बाद मैं कमियों में अपने गाँव चला गया । एक दिन कुछ कार्यक्रम में अपने गाँव से भीलवाड़ा गया । जब मैं एक रेस्तराँ के सामने से गुजर रहा था तो पीछे से आवाज आयी, "गुरुजी...तरण जी...गुरुजी..." मैंने घूम कर देखा तो वही छात्र पीछे ने मेरी ओर आ रहा था । मेरे पैर रुक गये । पुरानी घटना ने फिर एक बार मस्तिष्क में करवट ली । इसी बीच वह मेरे पास आया और तरण छूकर बोला, "आएँ गुरुजी, चाय पीजिए ।"

सचमुच, इस समय शरीर में मुझे एक शून्य-सा आभास हुआ और मैंने मन्द स्वर में टालने का प्रयत्न किया । मगर वह निर्भीकतापूर्वक आग्रह करता रहा । आखिर उसकी जीत रही । रेस्तराँ में जाने पर मालूम हुआ कि वह अपने ननिहाल आया हुआ है । हमने वहाँ बहुत-सी स्नेह भरी बातें कीं । पूरे समय नाथद्वारे की घटना से उत्पन्न प्रश्न बार-बार मेरे मन को नोचती रही । पहली बार इस बात का वास्तविक अहसास हुआ कि गुरु और शिष्य का क्या सम्बन्ध होता है ? उस दिन के बाद मन में यह विश्वास भी हुआ कि चाहे गुरु और शिष्यों ने बीच कितना ही क्षणिक अवरोध क्यों न पैदा हो, स्नेह की रेखाएँ तो अमिट ही होती हैं ।

## हंस और मोती



वेदप्रकाश जोशी

घटना सन् १९६४-६५ की है। लोक सेवा आयोग से चयन हो जाने पर मैंने मरकारी नौकरी में, नागरिकशास्त्र के वरिष्ठ शिक्षक के पद पर सर्वप्रथम जिला शुम्भुनू, ग्राम बघाई की राजकीय उच्चतर माध्यमिक शाला में कार्य आरम्भ किया। इस शाला के करीब ३५० छात्रों में, जातिवाद, साम्प्रदायिकता व स्थानीय सकीर्णता प्रचण्ड रूप में विद्यमान थी। एक तरफ तो बघाई ग्राम के छात्र दूसरे गाँवों से पढ़ने के लिए आये छात्रों से सौतेला व्यवहार करते थे; दूसरी तरफ जाट जाति के छात्र गूजर जाति के छात्रों से; ब्राह्मण व वनिये छात्र हरिजन व चमार जाति के छात्रों से तथा कुछ हिन्दू छात्र मुस्लिम छात्रों से कटे-कटे रहते थे। भेदभाव का घिनौना रूप यहाँ तक था कि अधिकांश छात्रशाला की प्याऊ से पानी पीना पाप समझते थे। कक्षा में एक जाति का छात्र अन्य जाति के छात्र को अपने पास काफी हील-हूजत के बाद बिठाता था।

भारत को कमजोर करने वाली इस विष-बेल को, भोलैभाले बालको—भावी भारत के भाग्य विधाताओं—के कोमल मन मस्तिष्क हपी गमले में अकुरित देख, एकता व समानता का प्यासा मेरा भावुक हृदय इस विनाशकारी बेल को प्रेम की छुरी से काटकर, देवता तुल्य बच्चों के मस्तिष्क हपी प्यारियों में भावात्मक एकता का मधुर पीछा उत्पन्न करने का संकल्प कर उठा।

कक्षा में प्रवचन व सैद्धान्तिक उपदेशों के माध्यम से जब छात्रों पर मेरे उद्देश्यों का असर नगण्य रहा, तब मैंने क्रियात्मक पाठ पढ़ाना शुरू किया। मैं छात्रों के साथ खेलता, शाला में उत्सव पर आयोजित ड्रामों में उनके साथ अभिनेता बनता, पिकनिक करके उनके साथ भोजन करता तथा घर पर आने



होने-होने उस विद्यार्थी को उदयपुर जाने वाली बस से वापस लाये । अब मेरा गुस्सा खाना ही नष्ट था । मैंने जब उसे पुनः देखा तो मेरे मन में कल की घटना पर दुःख हुआ, मगर अभी भी मेरा यह साहस नहीं हुआ कि मैं उससे क्षमा माँग लूँ या बात ही कर लूँ । हल्का-सा अहं मेरे मन की भटकाने हुए था ।

दूसरे दिन हम उदयपुर पहुँचे । कुछ ही दिनों बाद वार्षिक परीक्षा प्रारम्भ हुई । र्जननाम विषय की कॉपियाँ मेरे पास आयी । पुनः नाथद्वारे वाली घटना मस्तिष्क पर क्यों की रयी उतर आयी । कुछ क्षणों के लिए मन में वैमनस्य ने जन्म लिया । कम अंक देकर उस छात्र को फेल करने की बात मेरे मन में पैदा हुई, परन्तु परमपिता परमेश्वर ने दूसरे ही क्षण गर्ववृद्धि दी और मुझे इस कुकृत्य में रोक आ और उस छात्र के प्रति होने वाले अन्याय से मेरे हार्थों को नहीं रेंगा । मैंने गुणी ने उसे अन्तर् अंक देकर पास किया ।

परीक्षा समाप्ति के बाद मैं गर्मियों में अपने गाँव चला गया । एक दिन कुछ कार्यक्रम में अपने गाँव में भीलवाड़ा गया । जब मैं एक रेस्तराँ के सामने से गुजर रहा था तो पीछे में आवाज आयी, “गुरुजी...तरुण जी...गुरुजी...” मैंने घूम कर देखा तो वही छात्र पीछे में मेरी ओर आ रहा था । मेरे पैर रुक गये । पुरानी घटना ने फिर एक बार मस्तिष्क में कदबट ली । इसी बीच वह मेरे पास आया और चरण छूकर बोला, “आदर गुरुजी, चाय पीजिए ।”

सचमुच, इस नम्र जरीर में मुझे एक नून्य-सा आभास हुआ और मैंने मन्द स्वर में टालने का प्रयत्न किया । मगर वह निर्भीकतापूर्वक आग्रह करता रहा । आतिर उसकी जीन रही । रेस्तराँ में जाने पर मालूम हुआ कि वह अपने ननिहाल आया हुआ है । हमने वहाँ बहुत-सी स्नेह भरी बातें कीं । पूरे समय नाथद्वारे की घटना से उत्पन्न शर्म बार-बार मेरे मन की नोचती रही । पहली बार इस बात का वास्तविक अहसास हुआ कि गुरु और शिष्य का क्या सम्बन्ध होता है ? उस दिन के बाद मन में यह विश्वास भी हुआ कि चाहें गुरु और शिष्यों ने बीच कितना ही क्षणिक अवरोध क्यों न पैदा हो, स्नेह की रेखाएँ तो अमिट ही होती हैं ।

## हंस और मोती



वेदप्रकाश ओशी

घटना सन् १९६४-६५ की है। लोक सेवा आयोग से चयन हो जाने पर मैंने सरकारी नौकरी में, नागरिकशास्त्र के वरिष्ठ शिक्षक के पद पर सर्वप्रथम जिला मुन्सिफ, ग्राम बवार्ड की राजकीय उच्चतर माध्यमिक शाला में कार्य आरम्भ किया। इस शाला के करीब ३५० छात्रों में, जातिवाद, साम्प्रदायिकता व स्थानीय सकीर्णता प्रचण्ड रूप में विद्यमान थी। एक तरफ तो बवाई ग्राम के छात्र दूसरे गाँवों से पढ़ने के लिए आये छात्रों से सोतेला व्यवहार करते थे; दूसरी तरफ जाट जाति के छात्र गूजर जाति के छात्रों से, ब्राह्मण व बगिये छात्र हरिजन व चमार जाति के छात्रों से तथा कुछ हिन्दू छात्र मुस्लिम छात्रों से कटे-कटे रहते थे। भेदभाव का घनीभा रूप यहाँ तक था कि अधिकांश छात्रशाला की प्याऊ से पानी पीना पाप समझते थे। कदापि एक जाति का छात्र अन्य जाति के छात्र को अपने पास काफी हील-टुग्जत के बाद बिठाता था।

भारत को कमजोर करने वाली इस विष-वेस को, भीनेभाले बालकों—भाबी भारत के भाग्य विधाताओं—के कोमल मन मस्तिष्क हपी गमते में अंकुरित देख, एकता व समानता का प्यासा मेरा भावुक हृदय इस विनाशकारी वेस को प्रेम की छुरी से काटकर, देवता तुल्य बच्चों के मस्तिष्क हपी बयारियों में भावात्मक एकता का मधुर पीषा उत्पन्न करने का संकल्प कर उठा।

कथा में प्रवचन व सैद्धान्तिक उपदेशों के माध्यम में जब छात्रों पर मेरे उद्देश्यों का असर नगण्य रहा, तब मैंने त्रिमासिक पाठ पढ़ाना शुरू किया। मैं छात्रों के साथ खेलता, शाला में उत्सव पर आमोचिन ड्रामो में उनके माय अभिनेता बनता, दिवनिक करके उनके साथ भोजन करता तथा घर पर घर आने

जाने हर जाति के छात्र के साथ मैं मुझ की अपेक्षा एक बड़े भाई के रूप में मिलता । पीरे-पीरे उनमें प्रेममिलन कर लगभग तीन माह में छात्रों के नवनीत तुल्य कामन मन का मैंने अपनान की अभुनियों में दर्शन कर भेदभाव की दीवार तुड़वा दी थी; किन्तु समार व हरिजन छात्रों की अन्य छात्र अपने में अच्छी तरह घुला-मिला नहीं पाये । मुझे उस बात से बेहद मानसिक पीड़ा हो रही थी । अतः मैंने समानता की नजीर उपयुक्त अवसर पर प्रभावशाली रूप में देने की ठानी ।

२६ जनवरी, १९६५ की प्रातः जाला में व्यवहारोद्घरण के अवसर पर उपस्थित छात्र, स्टाफ, गवर्नर व सैकड़ों ग्रामवासियों की उपस्थिति में मैंने जाला के एक हरिजन छात्र की पानी का बोटा भरकर लाने को कहा । अन्य व्यक्तियों ने समझा कि जाला में कोई गमाशा दिखाने जा रहा हूँ । सभी की उत्सुकता बढ़ी । मैंने सबसे दगते-दगते उसी हरिजन छात्र के हाथ का लाया हुआ पानी पी लिया । इस घटना के दो विरोधी परिणाम निकले । एक तो यह कि मैं स्टाफ तथा ग्रामवासियों के मध्य लम्बे समय तक अपमानमिश्रित हास्य का पाथ चलकर रह गया । दूसरा यह कि छात्र मुझे अत्यधिक चाहने लगे । वे सभी निरंतर नजदीक आने लगे, दृश्य का पटाक्षेप यूँ हुआ कि जब मेरा बलभनगर (उदयपुर) के लिए स्थानान्तर हुआ तब दिसम्बर माह की रात्रि में कढ़ाके की ठण्ड में भी सैकड़ों छात्र 'जिन्दावाद' का नारा लगाते हुए मुझे बस स्टैण्ड तक छोड़ने आये । वे चाय, मेव, गेड़ा व पान बरबस मेरे मुँह में डूँगने लगे । मेरा व एक-दूसरे का झूठा होने पर भी सभी छात्र, हरिजन जाति के छात्रों के साथ उस सामग्री को मेरे साथ छीन-छीनकर खाने लगे ।

उस दिन, भावात्मक एकता के द्वार में गुथे, माँ सरस्वती के पावन मन्दिर में विचरने वाले उन हंमों को हिलमिलकर एकता का मोती चुगते देख मुझे जो स्वर्गीय सुख व आत्मिक आनन्द मिला, उसे 'कैसे भूलूँ' ?

जीवन में कभी-कभी ऐसी घटनाएँ घटित होती हैं जिनसे मानव की आदतों में परिवर्तन हो नहीं आ जाता बल्कि जीवन ही बदल जाता है। ऐसी ही एक घटना मेरे जीवन में घटित हुई।

१४ जुलाई, १९५६ को उपनिरीक्षक शिक्षणालय, चूरू के कार्यालय में अध्यापकों की नियुक्ति के लिए साक्षात्कार था। मैं भी साक्षात्कार के लिए वहाँ पहुँचा। साक्षात्कार मण्डल में उपनिरीक्षक श्री विश्वेश्वर दयाल बागना, उच्च विद्यालय, चूरू के प्राध्यापक श्री हेमराम तथा एक और सज्जन थे। मेरा साक्षात्कार सफल रहा। उपनिरीक्षक के अन्तिम प्रश्न से मुझे ऐसा आभास हो गया था कि मेरा चयन निश्चित रूप से हो जायेगा।

सायबाल बाजार में लौटते समय रास्ते में श्री हेमराम जी मिल गये। मैं ठाट से मिगरेट पीता चल रहा था। एकएक सामने साक्षात्कार मण्डल के सदस्य, श्री हेमराम जी को देखकर मैं सहम-सा गया। उन्होंने मेरे मुँह के भाव को ताड़ लिया। उन्होंने मेरी तरफ देगकर मुस्करा दिया। मैंने उनसे डरते-डरते नमस्कार किया। मेरी उनसे पहले कोई जान-पहचान नहीं थी। फिर भी वे मुझे देखकर क्यों मुस्कराये? यह प्रश्न मेरे सामने बार-बार आता। फिर तकें उत्पन्न हुआ कि मिगरेट क्यों न पीऊँ? ये इष्टरथ्यू में ही तो बेंटे थे। इनका और मेरा अब क्या सम्बन्ध हो सकता है? और इसमें मैंने अपने मस्तिष्क को सारस्वना दी। पुनः मिगरेट के धुरों के लच्छे हवा में उड़ाना हुआ स्तंभन की तरफ लम्बी सड़क पर बढ़ गया।

चार दिन पश्चात् दिनांक १८-७-५६ को उपनिरीक्षक की तरफ मैं नियुक्ति का आदेश मिला। नियुक्ति आदेशानुसार बागना उच्च विद्यालय, चूरू में, जिनके प्राध्यापक श्री हेमराम जी ही थे, कार्य करना था।

निगुनित आदेश को देगते ही श्री हेनराम जी का मुस्कुराता हुआ चेहरा सामने आ गया । अब उन्हीं के अमीन कार्य करना पड़ेगा यह विचार मस्तिष्क में फिर उठा । जब भी सिगरेट जलाता तभी सिगरेट के धुएँ में श्री हेनरामजी का मुस्कुराता चेहरा दिग्यायी देता । मस्तिष्क में अनेक प्रश्न उठते । सिगरेट से घृणा-सी पैदा हो गयी । मुझे अपने में कुछ कमी दिग्यायी देने लगी ।

हरना-हरना-सा निगुनित-गध निकर दिनांक २०-७-५६ को वागला उच्च विद्यालय में पहुँचा । प्रधानाध्यापक श्री हेनराम जी ने मुस्कुराते हुए मेरा अभिवादन स्वीकार किया । उनकी पैनी दृष्टि ने मेरे अन्तर को लकड़ोर दिया । अब उनके मुस्कुराने का कारण मेरे ममज्ञ में आ गया था । इस घटना का मेरे पर इतना प्रभाव पड़ा कि मैंने उसी समय सिगरेट पीना छोड़ देने का निश्चय कर लिया ।

आज भी जब कोई मुझे सिगरेट पीने के लिए कहता है तो मुझे श्रीमान् हेनराम जी का मुस्कुराता हुआ चेहरा स्मरण हो आता है ।

## साँसों के ढेर में खोये कुछ क्षण



थोकृष्ण विशनोई

अधूरे स्वप्न । मुरझायी कल्पनाएँ । अध्यापन के प्रति प्रारम्भ से अद्विच, उपेक्षा । जो नहीं चाहा, वही मिला । विवशतावश अध्ययन छोड़ा, अध्यापन प्रारम्भ किया परन्तु जैसे ही साँस आयी, रोटी का प्रश्न हल हुआ; दिमागी घुराफात फिर जाग आयी । अतीत के सँजोये स्वप्न साँसने लगे । मैं एकाएक उदासी में डूब गया । बुझा-बुझा चेहरा, बोझिल जिन्दगी । अपमानित न सही, उपेक्षित जीवन । कॉलेज समय के जाने-गहचाने मित्रों की नज़रों से एकाएक गिरना । ने जहाँ तक हो, बच निकलने का प्रयास करते । मैं उनका मित्र । केवल एक टीचर । जैसे कँदी होना या खूनी होना इतना अपमानजनक नहीं जितना एक टीचर होना अपमानजनक है । अतः मैं हर जगह कतराने लगा । न दोस्त ! न मरती ! न तमन्नाएँ ! व्यर्थ जीवन ! आत्महत्या कैसे करें, रोटियाँ जो मिल रही थी, वे चाहे कितनी ही हीन भावना से मनी हुई हों, आगिर आराम की रोटियाँ, सौम लेने का सुप, मृत्यु का भय, सब कुछ था ।

यह जीवन भार बन कर घसिटता रहा, मैं इसे बीमारी जानकर काटने लगा । दो, केवल दो महत्वपूर्ण काम । उपस्थिति पत्रिका में हस्ताक्षर, बेतन पत्रिका में हस्ताक्षर ! शेष खानापूति । सम्पूर्ण अस्तित्व जड़ बनकर फकूरी की तरह रोटी पर जम गया ।

परन्तु कौन जानता था, साँसों के ढेर में कुछ क्षण केवल शब्द थाण वास्तविक जीवन है, शेष उन क्षणों को पाने की प्रतीक्षा; उपद्रम मात्र । वर्षों का जीवन केवल दो-चार घड़ी का जीवन है, परन्तु वे घड़ियाँ इन वर्षों के लम्बे अन्तराल में कहीं खोयी हुई हैं । उन्हें पाना है, अन्न-पेट भरना है, जीवित रहना है, उस एक क्षण की प्रतीक्षा में !

ऐसा ही वह अमूल्य क्षण था, जीवन-प्रवाह का एक ऐसा तीखा मोड़,

जहाँ से मेरे सोचने-समझने की भारी बदल गयी। ऊबड़-खाबड़ कंकड़-पत्थर से निकल कर यह जीवन भारी गुप्ती से भरे समतल मैदान में बहने लगी।

ज्ञाना का हॉल विचारियों से भरा है। १०वीं कक्षा के छात्रों का विदाई समारोह।

अमेरी कान्नी रात ! बारनों से घिरा आसमान ! तूफानी हवाएँ टकराने लगी। एक पथिक राह भटक गया। बिजली का गिरना मोन का बुलाना।

कहीं दूर बहुत दूर, एक कुटिया में दीपक टिमटिमाने लगा। हवा में हिलती रोशनी पथिक का जीवन प्राण, एक दिशा। वन्हें दीपक की काँपती लौ ने सूर्य का पर दिखाया। पथिक ने प्राण पाये।

क्या आप जानते है यह भटका हुआ राही कौन था ? क्या आप जानते है यह कुटिया में दीपक किमने जलाया था ?

सब स्तब्ध ! जैसे कुछ जम गया। आश्चर्य, रहस्य भरा ! वन्सी की आँतों में दो बड़े झाँक आयी। गला रँध गया। भीगे स्वर। प्रश्नों का उत्तर !

“प्यारे नाथियो ! याद रहे ये विदाई की घड़ियाँ। यह भटका हुआ राही और कोई नहीं, मैं था; और वह रोशनी खोन—वे बैठे मेरे आदरणीय गुरु जी।”

एक रहस्य का उद्घाटन दूसरा रहस्य बन गया। मैं कुछ भी न समझ सका। घोलता रहा।

“परीक्षा में लगातार दो बार असफल। आत्महत्या ! हाँ, मैं आत्म-हत्या करने ही वाला था। दिल्ली मेल आ रही थी। मैं मोड़ पर खड़ा था। जैसे ही पटरी पर लेटने को हुआ, आँखें बन्द कीं; मुझे अचानक लगा कि गुरु जी मेरे सामने खड़े हैं। मुझे सूक्ष्म झटका लगा, मैं पीछे हट गया। मुझे गुरु जी वेशक याद आये, “बस हार गये ! मेरे शिष्य होकर इतने कायर ! जीवन एक खेल है, खेलते रहे, हार जीत कौसी, आत्महत्या कायरता है, याद रखना तुम मेरे शिष्य हो, कहीं मेरा नाम मत लगाना। और मैं बच गया।”

वन्सी चला गया परन्तु कौन जानता था मेरे ही विद्यार्थी के कहे दो शब्द मुझे जीवन की दिशा देंगे। तब से मेरा सोचने का दृष्टिकोण बदल गया। मुझे अनायास एक नयी दिशा मिल गयी।

मेरा यह उपेक्षित समझा जाने वाला जीवन इतना महत्त्वपूर्ण ! क्या इतना ही पर्याप्त नहीं है मेरे लिये कि मेरे किन्हीं क्षणों में रहे दो शब्दों ने एक फूल से बालक की जान बचायी। इसी तरह और भी न जाने किस पर क्या प्रभाव छोड़ जाऊँ।

कुसुमों का मासूम जीवन। जिजासा भरी आँखें। नटखट चहकता बाल-

...। जैसे शब्द !

पन । कितना पवित्र काम है मेरा । कितना महत्त्वपूर्ण । अपने लाड़ले बेटे में अमूल्य, प्रिय किसी भी अरब पति या जिताधीश के लिए क्या हो सकता है ? यह अमूल्य रत्नों का भण्डार मेरे पास है । मैं चाहे इन्हें सौंवारूँ, चाहे बिगाड़ दूँ । ये सैकड़ों विद्यार्थी ! कितनी महान् आत्माएँ एक साथ पल रही हैं इन मामूम चेहरों की छाया में । क्या फाइलें टटोलना, ईंट, चूना पत्थर का काम कहीं तुलनीय हो सकता है, मेरे इस काम से । नहीं ! कदापि नहीं !

पैसे ! क्या हुआ नहीं मिलते ! आँसू मूँदकर समाधि लगाने वाले योगी तपस्विनी को कौन पैसे मिलते हैं ! यह भी एक साधना है, पवित्र तपस्या !

बस मैं खुशी से भर गया । तब से आज तक मैंने कभी अपने-आप को होन नहीं, महान् ही समझा है । जब कक्षा में बैठे छात्रों के चेहरों की ओर देखता हूँ आनन्द उमड़ आता है, आँखें छलक आती हैं । कितने भोले, पवित्र, निश्छल है ये अबोध बालक ! छोटी-छोटी अँगुलियों से दो नहे से हाथ जुड़कर सामने आते हैं, उनका फूल-सा मुखड़ा झुक जाना है । भोली आँखों में तर्रता आदर, अपनापन । सत्य कहता हूँ, गद्गद् हो जाता हूँ । कितना पवित्र आनन्द है वह । और मैं मन ही मन अपने-आप को अत्यन्त भाग्यशाली समझने लगता हूँ कि मुझे अपना जीवन किन्हीं निर्जीव फाइलों की भेंट नहीं चढ़ाना पड़ा । जीवन ! जीवन ! चारों ओर घडकता जीवन ! जीवन का झरना, झरने का गीत ।

वह क्षण कितना मूल्यवान था जिसने मेरे जीवन की धारा को मोड़ दिया । मुझे एक आत्मनियन्त्रण तथा आत्मसंभ्रम की सार्थकता दी । आज मैं एक-एक शब्द तोल कर बोलता हूँ । क्योंकि मैं जानता हूँ, कोई मुझे सुन रहा है, मेरे इन शब्दों से अपना सुनहरा जीवन बुन रहा है । यदि मेरा एक शब्द किसी की मृत्यु के मुँह से बाहर ला सकता है, तो कोई एक शब्द उसे मृत्यु के जवड़ी में भी तो भेज सकता है ।

आत्मनियन्त्रण ! सार्थक जीवन ! आनन्द का अथाह समुद्र, इतने सारे उपहार जिस क्षण ने मुझे दिये क्या वह क्षण और वह विद्यार्थी बन्सी कभी भुलाये जा सकते हैं !



## बीज और वृक्ष

○

राधासोहन पुरोहित

मेरे मन की अगहरीय में मेरा के पदमन मेने रातकीय मेरा मे, प्रोत्त विद्या अनेक कल्पनाओं की मेकर रातकीय मे न भवभूमिक विद्यालय, वासीय मे कार्य प्रारम्भ विद्या । यह छोटा-सा गाँव अत्यन्त-सा सदा । सभी साथी अत्यन्त भी इस गाँव के लोग ही बसाया करते थे । मेरे मन में एक साथ थी कि इस छोटे-से गाँव की शाखा की समानता का लक्ष्य बनाने गया था कि वास्तव में प्रोत्तियन स्तर होना चाहिए कि लिए प्रयत्नशील रहें ।

कुछ ही वर्षों में यह गाँव सोच तथा समझ आसपास का क्षेत्र शाखा का अपना हो गया । आसपास की शाखाओं भी हमारे विद्यालय की प्रेरणा का स्त्रोत माननी थी ।

छः वर्ष इसी प्रकार कार्य करना रहा । शाखा तथा समानता को एक रूप देकर आनन्द प्राप्त करता रहा । सभी मेरे स्थानान्तर का आदेश आया । यह सब र मुनकर मेरे साधियों में तथा सामयामियों में निराशा की लहर दौड़ गयी ।

प्रस्थान के दिन तो प्रातःकाल में ही कुछ ऐसा वातावरण बना जिसकी अब केवल याद ही बाकी है । कई परिचारों ने अलग-अलग विदाई दी ।

शाखा की विदा के लिए तो शब्द भी नहीं है । सभी सम्मानित व्यक्ति शाखा में उपस्थित थे । साधियों ने तथा छात्रों ने जो स्नेह प्रदर्शित किया वह प्रतिक्षण गद्गद् करता रहा । इस छोटे-से गाँव में स्नेह का ऐसा अजस्र स्त्रोत था कि मैं स्नेहाभिभूत होकर आँसू बहाता रहा ।

गाँव के सभी व्यक्तियों ने विदा दी । मेरी आँखें उस दृश्य को देख भी नहीं पा रही थी । इतने आँसू कभी नहीं बहाये थे ।

८८ | कैसे भूलूँ

उस समय यही एक विचार मन में आ रहा था कि समाज शिक्षक को आज भी वही सम्मान देता है जो हजारों वर्ष पूर्व दिया करता था । यदि शिक्षक त्याग तथा निष्ठा का परिचय देता रहे तो बड़े से बड़ा कार्य किया जा सकता है । सम्मान तो कार्यकर्ता के पीछे घूमता है । मानवता ने अछूत गुणों का परिग्रह नहीं किया है । जब बीज मिट्टी में मिलता है, तभी पेड़ का रूप धारण कर सकता है ।

बम्बोरा की विदाई मेरे जीवन की अमूल्य निधि है ।

## प्रेरणा



### लक्ष्मीनारायण जीर्ण

मन गर्मियों की गान है । महाविद्यालयों में प्रवेश आरम्भ हो गये थे । मैं उदयपुर में अपने मकान में बाजार की ओर पैदल जा रहा था । मकान से लगभग डेढ़ कलांग की दूरी पर एक चौराहा पड़ता है । वहाँ मुझे एक छात्र मिला । सम्भवतः उसने मुझे पहने देना लिया होगा । वह मेरी ओर ही बढ़ा चला आ रहा था । मुझे यहाँ इस छात्र को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई । मैंने एक वर्ष पूर्व उसे उदयपुर से ३६ मील दूर उच्च माध्यमिक विद्यालय, चाँवड़ में पढ़ाया था । गत वर्ष में एम० एड० परीक्षण में था । अतः छात्रों के संपर्क में आने के सौभाग्य से वंचित रहा । अथ जब एक लम्बे कालान्तर के बाद उसे देखा तो जाला-जीवन की स्मृतियाँ ताजी हो जाना और प्रसन्नता की अनुभूति होना स्वाभाविक ही था । उसके पास आने पर मैं नमस्ते की अपेक्षा कर रहा था । किन्तु मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब वह नमस्ते न कर मेरे चरणों को छूने के लिए झुका । मैं सकपका गया । मैंने दोनों हाथ उसे उठाने के लिए बढ़ा दिये । आशीर्वाद भी दिया । किन्तु एक प्रश्न मेरे मन में विजली की भाँति काँध गया—वया मैं वास्तव में इस आदर का पात्र हूँ ? यदि मैं धर्मगुरु होता तो बात और थी । मैं तो ठहरा एक अध्यापक । फिर उस छात्र ने चौराहे पर मेरे चरण छूने का प्रयास क्यों किया ? इसमें उसका कोई स्वार्थ भी नहीं हो सकता, क्योंकि उसने उसी वर्ष हॉयर सेकेण्डरी परीक्षा दी थी । दूसरे, उस गाँव में छः वर्ष तक कार्य करने और एम० एड० प्रशिक्षण पाने के कारण सभी लोगों का विश्वास था कि शीघ्र ही मेरा स्थानान्तर हो जायेगा । काफ़ी विश्लेषण के बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि वह स्वयं छात्र की शालीनता थी जिसने उसे मेरे चरण छूने को प्रेरित किया ।

किन्तु उक्त घटना ने मेरे लिये एक नवीन विचार-क्षेत्र प्रस्तुत कर दिया । मैं यह सोचने लगा कि अध्यापक के वे कौन-से गुण हैं जो छात्रों को आकर्षित करते हैं ? मैं किस प्रकार अपने में उनका विकास कर सकता हूँ ? आज भी इस घटना की स्मृति मुझ में अध्यापन-कार्य के प्रति नवोत्साह का उन्मेष तथा छात्र वर्ग के प्रति आत्मीयता का संचार करती है ।

## पत्थर तो फेंका मगर.....



राजेन्द्रप्रसाद सिंह डोगी

अधिक नहीं, तीन वर्ष पूर्व की यह घटना है, जब मैं राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय, मगाड़ में कक्षा ८ को पढ़ा रहा था। एक होजियार छात्र को एक सरल से प्रश्न का उत्तर नहीं आया। मैंने उसे डाँटा, वह बहम करने लगा। मैंने उसे कक्षा से बाहर निकाल दिया। वह अपनी होजियारी के कारण अपने-आप को सर्वोच्च मानता था। बाहर निकलने ही वह एक पत्थर उठाकर दूर से ही कक्षा में मेरे ऊपर फेंककर घर भाग गया। प्रभु कृपा से वह पत्थर मेरे पास तक न पहुँचा। विद्यालय में इस घटना का एकदम फैलना स्वाभाविक ही था, मगर मैंने किसी से कुछ नहीं कहा।

विद्यालय-समय समाप्त होने पर जब मैं घर जा रहा था तो उस छात्र के घर होता हुआ गया। मेरे द्वारा मना करने पर भी ३-४ छात्र मेरे साथ-साथ चले ताकि कहीं कोई अप्रिय घटना और न हो जाय। छात्र के घर जाते ही गया देखता हूँ कि वह मेरे से माफ़ी माँग रहा है। उसके माता-पिता तो मेरे सामने बहुत ही लज्जित हुए। १-२ दिन बाद अपने एक निकटतम सम्बन्धी से मैंने सुना कि अब वह कतई बदल गया है। वह बहुत परिश्रम से पढ़ता है। वह समझ गया है कि गुरु के प्रति घुरी भावना अहितकर है। उनकी ताड़ना के पीछे भलाई छिपी रहती है। आखिर प्रभु ने ही उनकी रक्षा की जो पत्थर उन तक नहीं पहुँचा।

इस घटना के पश्चात् दो वर्ष तक मेरे पास वह पढ़ा, और उसका स्नेहमय व आदरपूर्ण व्यवहार पहले से कहीं अधिक रहा। छोटे-छोटे और कठिन प्रश्नों का उत्तर देना भी उसके लिए सुगम था। इस घटना से उसको बड़ा दुःख हुआ था। जब भी मैं कभी कक्षा में किसी को डाँटने-धमकाने लगता हूँ तो मारने-पीटने से पहले वह घटना याद हो आती है और छात्र को कक्षा में सर्वो के सम्मुख अधिक न कहकर उसे अकेले में बुलाकर समझाता हूँ।

कैसे भूलूँ

## सरस्वती का अपमान



गिरिधर गोपाल 'अलबरो'

आज जीवन की उतराई में स्मृति के किसी ऊँचे ढूँह पर खड़े होकर जब दूर दूर छूट गये अपने अतीत की तरफ देखता हूँ तब बचपन के उम्र आगन में सब कुछ धुंधला-सा दिखायी पड़ता है। जिन्हें देखना चाहता हूँ वे दिखायी ही पड़ते और बहुत-सा ऐसा कुछ दिखायी देता है जिन्हें भूल चुका हूँ। किन्तु एक दृश्य ऐसा भी है जो ज्यों-ज्यों समय व्यतीत हो रहा है, त्यों-त्यों अधिक साफ़ दिखायी दे रहा है।

बात तब की है जब मैं छोटी कक्षा में पढ़ता था और मेरे साथ पढ़ते थे मेरे बुआ के लड़के गोपाल। गोपाल भाई साहब जन्म से रोगी थे। उनको तिल्ली बढ़ने का रोग था। यह तिल्ली मृत्यु-पिशाचिनी बन कर उनका गून गौती रहती थी। भाई साहब का जीवन भारस्वरूप हो गया था। उनके हाथों पर चिर रोगियों की सी कृष्ण व्यथा सदैव मँडराती रहती थी। दुबले-तले हाथ-पाँव और आगे को निकला हुआ पेट। बड़े हुए पेट के कारण सब कोई उनको 'ढोलकी' कहकर पुकारा करते और भाई साहब म्लान मुख हो इस अप्रिय सम्बोधन को गुना करते।

भाई साहब पढ़ने में मध्यम प्रतिभा वाले छात्र थे। मैं था सब विषयों में 'ऑल राउण्ड चैम्पियन' यानी बिल्कुल कमजोर। कमजोर था, परन्तु घण्ट भी था और इसलिए मार से बचाव के जितने साधन थे, सबसे परिचित था। परन्तु भाई साहब इस विषय में आदर्श गांधीवादी थे। रुग्ण शरीरवासिनी उनकी निरीह आत्मा धर-धर कापती हुई देहवर्षित पर पड़ती हुई क्रूर मार का प्रतिरोध करना जैसे अधर्म ही समझती थी। ऐसी ही बरबरतापूर्ण मार ही एक अति कष्टपूर्ण घटना उस दिन घटित हुयी।

गणित का घण्टा था। गणित के अध्यापक ठिगने कद, दुहरे बदन और मजबूत हड्डियों के मालिक थे। उनका चौड़ा पंजा छात्रों की पूरी पीठ को

उठना हुआ पटना तो और उनकी संतुषिणी विमर्श की तरह मोम में चुमनी-नी महसूस होती थी ।

उस दिन भाई साहब की आवाज ग गयी थी । गर्जित उनका गनन था और अध्यापक महोदय उस दिन पीटने के अधिक उद्यमाह में थे ।

दोन विद्विष्टा कर भेद की मारान् प्रणिमा बनकर भाई साहब की पीटने लगे । अन्तर्गत मार के दो-आर अन्तर की उन्होंने भयपूर्वक सहे । उनके बाद गों-गों की उनकी अस्पष्ट गर्जित मार्मिक चीत्कार बनकर पूरे स्कूल की भर्त्सना लगी । मुझे यह दृश्य कभी का क्यों याद आ रहा है ।

भाई साहब गिर पर माता बाँधे हुए थे (उन दिनों टांगी या माता बाँधकर प्राणा जन्ती था) उनका माता विचरकर उनके गले में लिपटकर कन्धों पर ले होना हुआ नीचे पटक रहा था । उनकी निरीह आँखों में लगातार अश्रु सर रहे थे । उनके होठ भर-भर काँप रहे थे । प्रति भण्ड के साथ उनका मुँह कभी इधर और कभी उधर हो जाता था । उनकी पूरी देह सृष्टि भर-भर काँप रही थी । आँखें रहम की भिन्ना माँग रही थी और उनकी विल्विनाशक नीग्र मार्मिक कण्ठा विमोह रही थी । उनकी गुंजनी हुई चीत्त ने पूरे स्कूल को स्तब्ध कर दिया था । मुझे याद है, हैडमास्टर साहब भी भागे-भागे आये थे और देखाकर बाहर में ही ग्लान मुत्त लोट गये थे ।

उस घटना के पाँच सात-मास बाद ही भाई साहब दुनिया से उठ गये । निलनी पिशाचिनी बनकर उन्हें ला गयी । मूँह से रक्त यमन करते हुए ही उन्होंने प्राण त्याग दिये थे ।

वर्षों बाद की बात है, मैं स्वयं भी अध्यापक हो गया था । एक दिन स्कूल के अध्यापक द्वारा पिटते हुए एक कृष्ण छात्र की भर-भर काँपती हुई आवाज, गों-गों करती हुई अस्फुट कण ध्वनि और भर-भर काँपती देह ने एकाएक मेरी कालक्षेप से मिटी हुई उस स्मृति को पूरी तरह शकशोर कर जाग्रत कर दिया । तब से अध्यापक जीवन का लम्बा सफ़र कर चुका हूँ । कुछ वर्ष बाद ही इस रास्ते को छोड़कर अलग हो जाना पड़ेगा, परन्तु भाई साहब की वह कण-कातर मूर्ति और भी अधिक उज्ज्वल होकर मेरे मन-मानस को वेदनाश्रुओं से धूमिल कर देती है । किसी भी छात्र को देखकर इच्छा होता है कि उसे छाती से लगाकर स्वयं भी रो पड़ूँ ।

प्रश्न यह नहीं है कि 'कैसे भूलूँ' वल्कि प्रश्न यह है कि मैं स्वयं और इस संस्मरण कथा को पढ़ने वाले शिक्षक बन्धु कैसे स्मरण रखें कि बच्चों की असहाय चीत्कार से माता सरस्वती स्तब्ध हो जाती है और उनके निरीह आँसुओं से उसकी वीणा के तारों की झंकार, रदन-राग की सृष्टि ही करते हैं, शान का प्रसार नहीं ।

## भर पाया बिटिया को घुमाकर

लक्ष्मीनारायण जोशी

चावण्ड गांव में मेरा स्थानान्तर हुआ ही था। गांव छोटा-सा था और घर शाला के पास। उम्र पर वहाँ का पानी मेरे स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं था। पेट में दर्द रहने लगा। कुछ दुर्बलता भी अनुभव होने लगी थी। पच्चीस वर्ष की उम्र में मैं बीमारियाँ मेरे लिये लज्जाजनक थीं। मुझे चरक का वह वाक्य बार-बार स्मरण आने लगा—'सर्वमन्यपरित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।' सो मैंने शरीर पालन के लिए गांव तो नहीं छोड़ा; हाँ प्रतिदिन नियमित रूप में मुंह-जंघरे घूमने जाने तथा थोड़ी दौड़ लगाने की योजना अवश्य बना ली। एक-डेढ़ महीने में ही मुझे इसका लाभ अनुभव होने लगा। तब से प्रतिवर्ष सदियों में ३-४ माह के लिए मैं प्रातः घूमने व दौड़ने जाया करता हूँ।

फरवरी १९६८ की बात है। सर्दी में कुछ उतार आरम्भ हो गया था। मेरी माँ छ वर्ष की बिटिया सुधा, जिसका मेरे इस गांव में स्थानान्तर के साथ ही इस सप्ताह में पदार्पण हुआ था, पेट के दर्द की शिकायत करने लगी। श्रीमतीजी ने प्रस्ताव रखा कि इसे भी अपने साथ घूमने ले जाया करो। मैंने बला टालते हुए कहा, "एक तो चच्ची को इतनी जल्दी उठाना ठीक नहीं; दूसरे, इसकी उपस्थिति से मेरा स्वतन्त्रता में बाधा पड़ेगी।" श्रीमतीजी ने भावुकता से कहा, "लेकिन इसकी सेहन की ओर तो देखो। दिन-ब-दिन कमजोर होती जा रही है। पेट में दर्द अलग।" इससे पूर्व कि मैं कुछ बोलूँ सुधा ने हठपूर्वक कहा, "पिताजी, मैं जल्दी उठ जाऊँगी। मैं भी आपके साथ घूमने चलींगी।" नारी-शक्ति के आगे झुकने वाला मैं कोई पहला व्यक्ति नहीं हूँ। फिर इस प्रजातन्त्र के युग में दो के मुकाबले एक की क्या चले? श्रीमतीजी के आप्रह्व और सुधा की भोली अनुनय की विजय हुई। उसके लिए कंठवास के नुद खरीदे गये। दीपते समय मुँह बन्द रखना चाहिए, हाथों



को छापी की जेबाई में दिखाना चाहिए, बहुत तेज नहीं दोड़ना चाहिए आदि आवश्यक निर्देश देकर हमने दिन में सुधा को साथ में जाने का निश्चय किया।

दूसरे दिन प्रातः में और सुधा घूमने के लिए खाना हुआ। यद्यपि पूर्व दिना में उषा की लम्बाई छाने लगी थी तथापि उस समय अच्छा सासा अंगेरा था। कुछ दूरी तक हम दोनों साथ-साथ गये। मुझे शीचादि में निमून होना था (मैंने घर में शीचालय नहीं है)। अतः सुधा में कह दिया कि वह इसी प्रकार घूमती हुई आ जाय व जहाँ से इच्छा हो वहीं घर में लौट जाय। मैं रास्ते में मिल जाऊँगा। उसने सहज ही स्वीकार कर लिया। मैंने अपनी गति तेज की और सड़क छोड़कर एक ओर बढ़ गया। अभी कुछ ही दूर पहुँचा था कि एक अजीब ध्वनि सुनायी पड़ी। मैं ध्यान देकर सुनने लगा। ध्वनि स्पष्ट होती गयी—‘पिनाजी, पिनाजी’। यह तो सुधा की पुकार थी—बड़ी कानर और आँसुओं से गीरी। मैं सुधा की ओर दौड़ पड़ा और माँत्वना देने के लिए जोर-जोर से आवाज देने लगा। हृदय में भुकभुकी हो रही थी—कहीं कोई जानवर तो नहीं आ गया; या साँप-बिच्छू ने तो नहीं काट लिया? क्षणों का अन्तर पहाड़-ना लगा। दौड़ते हुए सड़पुटे में देखा—सुधा रोती हुई चली आ रही है। आसपास कोई जानवर न देखा मैं कुछ आश्वस्त हुआ। पास जाकर मैंने रोने का कारण पूछा तो उसने पूर्ववत् रोते-रोते उत्तर दिया, “गिर गयी।” मैंने समझाया, “गिरने पर इस प्रकार चिल्लाने से क्या लाभ? उससे चोट तो ठीक होने से रही।” फिर भी बालिका जो ठहरी। मैंने उसके हाथ-पाँव सहलाये। ईश्वर की कृपा से थोड़ी-सी ही सर्रांच उसे लगी थी। उससे मेरे घूमने में जो बाधा पड़ी उस सम्बन्ध में अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं। किन्तु इस घटना के आधार पर जब मैंने सुधा को साथ घूमने न ले जाने का प्रस्ताव रखा तो एक के मुक्तावले दो मतों से गिर गया। सुधा अब भी घूमने की इच्छुक थी। हाँ, समय आधा घण्टा आगे बढ़ा दिया गया जिससे अँधेरे में टोकर लगने जैसी दुर्घटना की पुनरावृत्ति न हो।

अब दूसरे दिन अच्छा प्रकाश हो जाने पर हम घूमने के लिए खाना हुआ। कुछ दूरी तक तो हम पूर्व दिन की तरह साथ-साथ गये। फिर मैंने सुधा से कहा, “तू घूमती हुई चली जाना और जहाँ सड़क की दाहिनी तरफ खुली जगह और पानी बहता हुआ आवे वहीं ठहर जाना या घर लौट जाना।” उसने पूछा, “वहाँ से? जहाँ एक बार बस से जाते समय हमने भँसें देखी थीं।” मुझे भँसों का स्मरण नहीं आया। किन्तु सोचा, जब पास ही खुली जगह है और पानी बहता है तो भँसें भी जरूर रही होंगी। मैंने ‘हाँ’ कर दी और सड़क छोड़कर एक ओर चला गया। सुधा सड़क पर आगे बढ़ गयी। शीचादि से निवृत्त होकर मैं पुनः उसी सड़क पर आगे बढ़ा। पानी वाले स्थान पर

पट्टी, किन्तु मार्ग में कहीं गुफा नहीं मिली। मोघा यह घर पहुँच गयी होगी। पर यदि न पहुँची हो तो? इनमें कम समय में वही तक पहुँच कर घर लौट आये और वहीं दिखायी न पड़े, इसमें सन्देह था। मैंने गडक पर ध्यान से देखा। कबची गडक पर घर से विपरीत दिशा में मुँह किए गुफा के घुटो के चिह्न स्पष्ट दिखायी पड़ रहे थे। एक भी चिह्न घर की दिशा में न था। स्पष्ट था कि गुफा आगे बढ़ गयी है। अब मैं उसकी खोज में दौड़ने लगा। पट्टी गडक थी—वहीं उतार, वहीं चढ़ाव, वहीं मोड़। हर मोड़ व चढ़ाव पर मैं आशा करता कि अब गुफा नज़र आ जायेगी। किन्तु प्रत्येक बार गडक गायी मिलती। मैं बार-बार उसके घुटो के चिह्न देखता और आश्चर्य होता—यह गयी तो इसी रास्ते पर है। मैं दो मील से भी आगे पहुँच चुका था, किन्तु गुफा का वही पता न पता। येचारी मागूम बच्ची रितनी बली है। मुझे उसके भोजन पर तरस भी आ रहा था और शम्शाहट भी। इन्हीं विचारों में दृढ़ता उताराना मैं उम चढ़ाई पर पहुँचा जहाँ से एक छोटी-सी नदी दिखायी पड़ती है। तब उस पार करती हुई निश्चयनी है। वही गुफा दिखायी पड़ी। पास में पानी बह रहा था, यद्यपि भँगे वहाँ भी न थी। स्पष्ट है कि भँगे व पानी वाले स्थान से गुफा का अभिप्राय इसी स्थान से था। मैंने उसे आवाज़ दी। मार्ग में वापसीत से मातूम हुआ कि वह बहुत समय तक दौड़ती रही है। जब तक घर पहुँचे सूर्य काशी ऊपर चढ़ चुका था।

इस घटना ने मेरे घुमने की मुविधा व स्वतन्त्रता को छीन ही ली, मुझ पर भारी उत्तरदायित्व भी डाल दिया। मैंने श्रीमती से आग्रह किया कि एक-दो वर्षों के लिए गुफा का घुमना स्थगित रहे। किन्तु जिस पर बीतनी है वही जानता है। उनको क्या? उन्होंने एक आदर्श वाक्य प्रस्तुत कर दिया—'हर अल्पे काम में विघ्न आते हैं'। अब मेरे लिये तीन मार्ग थे—या तो उन्हें येन बेन प्रकारेण समझाऊँ या भविष्य में जो भी हो उसे चुपचाप सहन करता चला जाऊँ अथवा घुमना ही छोड़ दूँ। इसी समय गुफा बोल उठी, "अब तो मैं घुमने नहीं जाऊँगी। मेरे पैर दर्द करते हैं।"

तभी से मैं स्वछंद जीवन व्यतीत कर रहा हूँ।—घर में भी, शाला में भी।

## वे महिलाएँ

### प्रजमोहन द्विवेदी

भारत के कण-कण में ऐसा आकर्षण छुपा है कि गुरुर देशों के निवासी भी अनादि काल से प्रकृति के पालने इस पुण्य-भूमि में अपने विधुष्ट जीवन से तंग आकर शान्ति की गोद में निरन्तर आते रहते हैं और यहाँ की प्राकृतिक दृश्यावस्थियों तथा जीवन के सामान्य आदर्शों से दिना-दर्शन पाकर अपार नृपि का अनुभव करते हैं।

एक ऐसी ही घटना मेरी उत्तराखण्ड की यात्रा के समय घटी जबकि मैं और मेरे एक मित्र ग्रीष्मकालीन अवकाश बिताने हिमालय की गोद में चल पड़े थे। हम कहीं तक चले जावेगे यह तो निश्चित नहीं था, परन्तु लक्ष्मण-सूना व स्वर्गाश्रम देखने की इच्छा अवश्य मन में थी। जून के महीने की पहली तारीख को हम लालसोट से रवाना हो गये। एक दो दिन देहली के ऐतिहासिक स्थानों का भ्रमण करने के बाद हम रेल द्वारा हरिद्वार पहुँचे। इस स्थान पर आते-आते गंगा नदी अपनी बाल सुलभ चंचलता को त्याग कर प्रथम बार अपने पिता हिमालय की गोद को छोड़ पतिगृह सागर की ओर भय, लज्जा और उत्सुकता के कारण धीरे-धीरे पाँव उठाती प्रतीत होती है। ऋषिकेश व लक्ष्मणसूना में गंगा स्नान करके हम सन्ध्या होते-होते गरुड़ चट्टी पहुँच गये।

रात्रि-विश्राम गरुड़ चट्टी पर ही करना था। एक छोटी-सी दूकान में उसके हँसोड़ दूकानदार से हमारा हास-परिहास चल ही रहा था कि दो विदेशी महिलाएँ अपने भारतीय दुभापिये—वनारसी तथा उसके ग्यारह वर्षीय बालक विल्लू—के साथ वहाँ आ धमकी। वनारसी से मेरा परिचय होने में देर न लगी। वनारसी चतुर्वेदी था और मैं द्विवेदी। हँसोड़ दूकानदार ने अपनी अभ्यस्त जिह्वा से नपे-तुले शब्दों में आगन्तुकों का स्वागत किया और भोजन व्यवस्था में जुट गया।

राहज आकर्षण की अपेक्षा विदेशी होने के कारण उन महिलाओं की

दिवसों को निकट से देखने का सोच बढ़ावित् मुझे उनकी ओर अधिक उन्मुख बन गया था। होटल के स्थान में घटून विचारों पर, जहाँ गंगा अद्वैतवादी बनती हुई बह रही थी, हम सभी सीमेन्ट के बने घाट पर आ बैठे। पुलिया की चौदनी में गारा दृश्य बम्पनालोक के समान प्रतीत हो रहा था। सब लोग अपने विचारों में गोये घंटों तक हिमात्मक की उम अनुपम मोभा को निहारते रहे। गन्धमा पर्वत-निगरो की ओट में आये, उसमें पूर्ण ही हम गंगा के स्वच्छ घाट को अपना पर्यट बनाकर निद्रावीन हो गये।

उपवास के भीतल पवन ने गंगा के पावन जल-विन्दुओं को हमारे ऊपर उठान कर हमें जगाया। मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वे दोनों विदेशी महिलाएँ सभी की जाग चुकी थी। अमरीकी युवती लगानार गंगा के तीव्र प्रवाह को देख रही थी। उमरी भावमुद्रा में प्रतीत हो रहा था कि उसका अनागत मानस उमकी किसी भयकर कृतान का अनुभव करा रहा है। डेनमार्क वासिनी महिला की एक घटून की ओट में स्नान करके भागीम वेण-भूरा—गाड़ी तथा बोली—में गत्रे हुए देतकर में दग रह गया। यह कैसा परिवर्तन ? उनके माथ आये गारद में तब मुझे बताया कि यह प्रौढ़ महिला पाकिनेरी आयम में गन छट माग में रहकर आरिगक उपनि के लिए साधना कर रही है। भगवान श्रीहृण की यह परम भता है तथा हिन्दू-जीवन के आदर्शों में अटूट धडा रगनी है। भारत को अपनी अध्यात्मिक जन्म-भूमि मानकर गत कई वर्षों में यह दस देश में आती रही है। यह दूसरी युवती भिम मोनिया अमरीका में लगभग एक माह पूर्व आयी है। इसे आप अनागत एक गम्भीर विचारों में लीन देख रहे हैं, न तमय पर स्नान करती हैं न भोजन। सभी कुछ अव्यवस्थित गा बस रहा है। मेरे द्वारा यह पूछने पर कि यह अमरीका कब लौटेगी, बनारसी ने उत्तर दिया, “कह नहीं सकता अमरीका कब लौटेगी, लेकिन बातों में ऐसा लगना है कि यह अमरीका के विलापी एक कृत्रिम जीवन से ऊब चुकी है।”

हमें उमी दिन हरिद्वार लौटना था। बनारसी से हम विदाई ले ही रहे थे कि वह यूरोपीय महिला हमारे समीप आयी और हमारा परिचय पूछने लगी। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि हम दोनों शिक्षक हैं तो अनायास उनके मुँह से निकल पड़ा—टीचर ! मो सिम्पल ! (Teacher ! So simple !)

यूरोपीय कियर जा रहा है ? ..... उसे इस बात पर नेद था कि यह परिचय विदाई के समय हुआ। यदि इससे पूर्व यह परिचय हो जाता तो वे इस देश के बारे में हमसे बहुत कुछ जानकारी लेना पसन्द करती।

मे विदेशी महिला के हिन्दू-धर्म के प्रति इतने अटूट प्रेम को देखकर सोचने लगा, “एक हम है जो अपनी संस्कृति की उपेक्षा कर पाश्चात्य-सम्बन्धता की

पोथी समक-दमक की ओर ल-याभुज्य होड़ते चले आ रहे है और एक यह  
 महिला है जिसका रोम-रोम भारतीय संस्कृति का स्पर्श पाकर पुलकित हो  
 उठा है । अपने पूर्वजों की अपुन्य परीक्षों का महत्त्व भारत की वर्तमान  
 पीढ़ियों कम समझ पायेंगी । भारतीय शिक्षक की मान्यता का महत्त्व आज  
 विदेशी श्रोतों और पाठकों ने जिस रूप में पहचाना है, तथा भावी शिक्षक भी  
 उसे समझ सकेंगा ।"

यह रमृति मेरे मस्तिष्क में एक स्थायी प्रभाव बन गयी है, उसे 'कैसे भूत' ।

## जब मुझे शिक्षा मिली

धीनन्दन चतुर्वेदी

जिनने परिश्रम के बाद अभियंताओं के कोशस ने चम्बल को जीता था ।  
कमंड मे कमंड व्यक्ति भी ग्राहम छोड बैठता, किन्तु आदमी का हठ ठहरा,  
आगिर सरतर प्रवाह को रोककर नये युग का नया तीर्थ खडा हो गया ।

बीध के निर्माण का कार्य पूरा हो जाना ही क्या कम बात थी, फिर  
चाचा नेहर्न उसका उद्घाटन करने आ रहे थे । तब जइना कहाँ टिकनी ?  
वही सड़कें नये गिरे मे बन रही थी । कहीं टिन-बहुरों से बनी गन्दी ढूकाने  
हटायी जा रही थी । पाठशालाएँ तो सभी उत्सव की तैयारी कर रही थी ।  
छात्रों को सड़क के दोनों किनारों पर कंगे गाछा किया जायेगा, जब नेहर्न जी  
की मोटर निकलेगी तब वे किस मुद्रा मे सड़े होकर अभिवादन करेंगे । इसी  
ध्यस्तना में दिन बीत रहे थे । तीन दिन पहले ही आदेश आ गये थे कि कौन-  
सी सड़क पर वहाँ, किंग विद्यालय को खड़ा होना था ।

अन्ततः वह दिन आ गया । प्रातःकाल मे ही उठकर बच्चों को साथ  
लिया और निदिष्ट स्थान पर पहुँच गये । पण्डित जी के जाने में बहुत देर  
थी । हम अपनी जगह कक्षाओं को जमाकर सड़े हो गये, लेकिन सड़े-खड़े  
करने क्या ? छात्रों को बिठा दिया । शिक्षक अलग-अलग कक्षा के साथ थे ।

पूर्वो शिक्षित की मालिमा अब सफेदी से चुकी थी और मन्द बागु की  
शीतलना लुप्त हो चली थी । वर्षा का मौसम नहीं था, कोटा की बसाबट भी  
उम दिशा मे तब तक नहीं हुई थी । इसलिए सड़क के दोनों ओर झरबेरी की  
झाड़ियाँ व कीकर के छोटे-छोटे पेड़ों के अतिरिक्त कुछ भी न था, जिनके पत्ते,  
तने और शाखाएँ सभी धूल जम जाने से मलिन हो गये थे । नयनाभिराम  
कहाँ कुछ भी न था । ऊबड़-खाबड़ घरती पर मय-तत्र विलरे बेडीन पत्थर  
और बड़े-बड़े गड़े सूखी भूरी मिट्टी के साथ दृश्य की कुरूपता को द्विगुणित

कर रहे थे। हूँ लगभग दो कलांग पर हवाई अड्डे का लोहे के सार्वों और काँटेदार तारों का जंगला दिखायी दे रहा था जो अभी अवसर के लिए चमकीले गहरे रंग में पोना गया था।

भीरे-भीरे भूषण की ओर गांधी में बेनीनी भी। भूषण में पसीना आने लगा। मड़क के बिनाये मड़क टक्का-टक्का नीम के नुओं की छायाएँ तरबस आकणित करने लगी। मुझे अनुमान में कटोर समता जाना था, इसलिए मेरी कक्षा मन मान कर बँधी थी। जब तक शिक्षक गया हो, छात्र भी कैसे गिनके? प्रधानाध्यापक जी भी वही भूमक समस काट रहे थे। कुछ बहुत पुराने अध्यापक भी गये थे। सब परेजान थे। पड़ी की मुठवाँ भीरे-भीरे रंग रही थी। निश्चिन समस में अभी पन्द्रह मिनट जेप थे। मुझे घूर्तता उपजी। जवाहरलाल जी का यात्रा-भारं हवाई अड्डे के सामने वाली मड़क से सीधे जहन की बस्ती में जाकर, फिर हमारी ओर ने घूमकर निकलने का था। उन्हें वायुयान से उतरने देगने की प्रबल इच्छा थी, इसलिए एक नाटक रचा। छात्रों ने उपट कर कहा, "नीचे बँटे रहना, मैं आ रहा हूँ। देगना, कोई मड़वड़ न हो।" और अपने एक समवयस्क शिक्षक को लेकर प्रधानाध्यापक जी ने कहकर चल पड़ा कि हम दोनों अभी पानी पीकर आते हैं।

चुंकि मेरी गिनती झूठे लोगों में न थी इसलिए उन्होंने अर्थ भरी दृष्टि से देगा और कहा दिया, "जाओ, जल्दी आना, समय हो रहा है।" हमने एक फर्लांग का मार्ग तय किया कि कोनाहल सुनाई पड़ा। अनेकों आँखें ऊपर देख रही थीं। विमान दिखायी दे रहा था लेकिन अभी पाँच मिनट जेप थे। इसलिए विमान नीचे आकर भी उतरा नहीं। उसने एक चक्कर पूरे शहर का काटा। इस समय ईमानदारी इसमें थी कि हम वापस दौड़कर अपनी कक्षाओं को नँहालते। साथी ने कहा भी कि "लोटे", मैं बोला "नहीं"। हम दौड़े, किन्तु विपरीत दिशा में।

जनता पूरे जोर से दौड़ रही थी। हम भी उसमें सम्मिलित हुए। मुख्य द्वार हूँ था, अतः भीड़ के साथ काँटों वाले जंगले के तार उठाकर हम हवाई अड्डे की परिधि में पहुँच गये।

हमने चाचा नेहरू को विमान से उतरते देखा। वे जनता को अभिवादन करते हुए उतरे। खुली जीप में बैठकर उन्होंने जनता के बीच एक चक्कर लगाया और जीप में रखे फूलों के ढेर में से मुट्टियाँ भर-भर कर जनता पर उछालीं। इसके बाद उनकी जीप मुख्य द्वार से बाहर हो गयी। जीप के चारों ओर गहरी भीड़ थी जिसके कारण उसे रुक-रुक कर चलना पड़ रहा था। अब हमने सोचा, हमारी खोज हो रही होगी। इधर रास्ता बन्द था। वापस लौटना आवश्यक था, क्योंकि घूमकर जीप उसी सड़क पर पहुँचने वाली थी

जहाँ हमारे खप्पे गड़े थे । जन्दी अथिब, रासने गभी बन्द तथा भीघ्र पहुँचना आवश्यक । अब क्या किया जाय ? निदान बरी रासना अपनाया जिससे अन्दर आये थे । मेरा साथी भीड़ में न जाने गिरा भटक गया था । मैंने काँटेदार तार को नतिव जँबा किया और बाहर बूट पड़ा; लेकिन कूदना था कि धरती पर पैर टिकने से पहले ऊपर झूल गया । बुशशर्ट घड़न मोटे बगड़े की पहन गयी थी । वह पीठ के ऊपर से तार के काँटे में उलझ गयी । मुझे अपनी करती का फल भिस गया । बगड़ा चरें... की ध्वनि करता हुआ बहुत अधिक फट गया और मैं जमीन पर आ टिका । पीठ में भी काँटे गड़े । कपड़ा अब भी काँटों में नहीं मुलाता था । पीठ में सून भी बढ़ने लगा था । मैं मुलझाने के प्रयास में और उलझना जा रहा था । तब तक हँसता हुआ मेरा साथी दिमायी दे गया । मैंने आवाज देकर कहा, "मुलझाना तो !" वह आया और मुलझाता हुआ उर्दू के घेर की पंक्ति बोझने लगा, "गुली मे तार बेहतर है जो दामन धाम लेने हैं ।" मैंने कहा, समय मजाक का नहीं है, भागो अपने लडकों की दिशा में । लेकिन अब चोरी छिप नहीं सकती थी । दोनों दौड़ते हुए पहुँच गये । प्रयानाध्यापक जो मे पीठ छिपाना चाहता । तभी एक साथ अनेकों चिल्ला पड़े, "अरे ! यह क्या हुआ ?" लड़के भी पागो और इकट्ठे हो गये । मेरे छल का रहस्य खुल गया । मैं बहुत शोषा ।

पण्डित जी निश्चल गये । घर लौटते समय बहुत-बहुत की देत रहा था । गभी अश्वे बगड़े पहने थे । मैं पीठ पर फटी बुशशर्ट को छिपाना निमिषाता हुआ घर लौटा । बुशशर्ट नयी होने से खायी नहीं जा सकती थी । उसे गिलवाया गया । निमान स्पष्ट दिमायी देने थे । फिर जब भी मैं उस बुशशर्ट को पहनकर जाता, मेरी चोरी की कहानी फिर से उभर जाती । जब भी मेरे टग चमचार की चर्चा चलती, मेरे मन में एक विचार हर बार उठना कि चोर और टग दुनिया को छलकर बच जाते हैं, लेकिन कोई भत्ता आदमी मूठ बोले यह ईश्वर भी नहीं सह सकता । चायद इसलिए कि गन्दगी के छेर पर बायोच भी छिप जाती है, स्कैड वरत पर छोटा दाग भी चमक जाता है ।

यह फटी हुई बुशशर्ट अब भी मेरे पास है । जब भी उसकी पीठ का निशान दीग पड़ता है, तब ही मेरे मन में कोई आस्था जाग उठती है, कोई अवश्य है जो हम सब को देगता है । जहाँ हम बहकते हैं, वह आँखें मोल देता है । मैं मक्ल शोहरा हूँ कि अब यँगा छल नहीं करेगा ।





यह सोचते हुए मुझे भी अपना बचपन याद आ गया। गीमी यादें। दर्द भरा संदीप। सगा जैने मैं ही हरिभजन हूँ। मेरी भी किमी ने सहायता की थी। निश्चय किया, मैं ही हरिभजन की फीम भर दूंगा, किताबें भी ला दूंगा।

पाँच-छ. दिन बाद तनखाह आयी। सोचा, हरिभजन की फीम भर दूँ। हरिभजन की बमाग में ही मेरा पीरियड था। पता लगाने के लिए पूछा, "हरिभजन ! फीम दे दी ?"

'हो।' उगने नीचे देराने-देराने ही उत्तर दिया।

'मुझे आश्चर्य हुआ। पूछना चाहता था, नहीं मे दी ? पर पूछा नहीं। पढ़ाने लगा। पढ़ाते-पढ़ाते बीच में ही रुक कर कहा, "जिनके पास किताब नहीं है, लेंगे हो ज़ार्य।"

बैठे सड़कटाई। कुछ सड़के राखे हुए, पर हरिभजन बंठा था। मुझे जैसे विस्मय नहीं हुआ। पूछा, "हरिभजन, तुम्हारे पास किताब है ?"

"जी, हो।" उमने किताब मेरे सामने की, "यदि विश्वास नहीं हो, तो देना सीझिए।"

"अच्छा, बँट जाओ।" और मैंने आगे पढ़ाना शुरू किया। लेकिन मन पढ़ाने में नहीं लगा। सोचा, बड़ी देर कर दी। किमी से उधार लेकर भी हमकी फीम भर देनी चाहिए थी, इसे किताब खरीद देनी चाहिए थी। इसकी माँ ने न जाने क्या-क्या सहा होगा।

फिर सोचा, माँ के एक ही तो बेटा है, जिद्द पर आ गया होगा। बेचारी बुढ़िया ने एकता गहना बेचकर ड्रैम बनवा दी होगी। मुझे बुढ़िया की विवशता पर बड़ी दया आयी। विचार आया, शायद इसने यजमान-वृत्ति शुरू कर दी है।

बान ही बान में एक दिन घर वाली ने कहा, "सुनाजी तुमने ! यह हरिभजन तो बड़ा तेज निकला। आखिर उसने यजमान-वृत्ति शुरू नहीं की, तो नहीं की। जब माँ ने बहाना कहना, बोलना शुरू किया, तो मजदूरी करनी शुरू कर दी।"

"मजदूरी !" मैंने आश्चर्य व्यक्त किया, "वह तो सैगड़ा है।"

"हाँ, फिर भी ऐसा दोड़-दोड़ कर काम करता है कि जवान से जवान को पीछे छोड़ जाता है। दो घण्टे सुबह, दो घण्टे शाम को काम करता है और आधी मजदूरी लेता है।" 'हूँ', मेरे सामने हरिभजन की फीस, किताब और ड्रेस दोड़ने लगी। उमका चेहरा क्लम की तरह सामने आने लगा और उसकी आँखें मुझे यह कहती हुई प्रतीत हुई, "आप मुझे दान देना चाहते हैं न ! लेकिन मैं हाथ्या नहीं। नहीं लूँगा दान।" मुझे अपने विचारों पर बड़ा क्षोभ हुआ। क्या-क्या सोचा था मैंने उस विकलांग, पर परिस्थिती छात्र के लिए।

दूसरे दिन मैं स्कूल गया तो हरिभजन मुझे अपने से भी बड़ा नजर आया।

# हार नहीं मानूँगा

रामेश्वरदयान श्रीमान्नी

यह भी नहीं कह सकता कि मास्टर लड़कों को कितना मियाँ सकता है, लेकिन यह जरूर कह सकता हूँ कि कुछ लड़के मास्टर को हारना सिखा सकते हैं कि उनकी जिन्दगी ही बदल जाय।

उमका नाम था हरिभजन। सरकारी स्कूल की छठी क्लास में पढ़ता था। उसके कपड़े सड़े और कटे हुए थे तथा बाल मुँगे। मैंने उसे कभी मुरकाराते हुए भी नहीं देखा, लेकिन उसके सहपाठियों ने पता चला कि वह बहुत जैतान और हंगोड़ है। दीगता तो ऐसा था, जैसे कुछ नहीं जानता, लेकिन कक्षा के सामान्य लड़कों से कमजोर न था। एक पाँच से लँगड़ा था और मुँह की हड्डियाँ हनुमान की सी उभरी हुई थीं।

हरिभजन जानि का ब्राह्मण था। उसका पिता मर चुका था और माँ लोगों की पानी-पिसाई करके बड़ी मुश्किल से दो जून पेट भरती थी।

एक दिन मैंने मुना, माँ-बेटे में लड़ाई हो रही है। माँ विवशता से रो रही थी और मक्रोध कहती जाती थी, "मैंने सारी उमर मजदूरी करने का ठेका नहीं ले रखा है। अच्छे-अच्छे लखपति माँगते हैं। ब्राह्मण का बेटा है, तो माँगने में क्या शरम।" हरिभजन कह रहा था, "अगर मँगवाना ही था, तो मुझे स्कूल में दाखिल ही क्यों करवाया। चाहे मर जाऊँगा, माँगूँगा नहीं।"

श्रीमती जी ने व्याख्या की, "बुढ़िया ठीक ही कहती है। बेचारी अकेली है। न जमीन है, न जायदाद। जो कुछ है, यजमान-वृत्ति ही है। इधर महँगाई का जमाना। आज किताब लाओ, आज काँपी लाओ! आज ये फ्रीस भरो। आज वह फ्रीस भरो।"

मुझे भी लगा जैसे बुढ़िया सच ही तो कह रही है। पर मैं हरिभजन से माँगने के लिए कैसे कहूँ?

यह सोचते हुए मुझे भी अपना बचपन याद आ गया। गीली यादें। दर्द भरा संगीत। लगा जैसे मैं ही हरिभजन हूँ। मेरी भी किसी ने सहायता की थी। निश्चय किया, मैं ही हरिभजन की फीस भर दूंगा, किताबें भी ला दूंगा।

पाँच-छः दिन बाद तनरुवाह आयी। सोचा, हरिभजन की फीस भर दूँ। हरिभजन की बलास में ही मेरा पीरियड था। पता लगाने के लिए पूछा, "हरिभजन ! फीस दे दी ?"

"हाँ।" उसने नीचे देखते-देखते ही उत्तर दिया।

'मुझे आश्चर्य हुआ। पूछना चाहता था, कहाँ से दी ? पर पूछा नहीं। पढ़ाने लगा। पढ़ाते-पढ़ाते बीच में ही रुक कर कहा, "जिनके पास किताब नहीं हैं, खड़े हो जायें।"

बैचे खड़खड़ाई। कुछ लडके खड़े हुए, पर हरिभजन बैठ गया था। मुझे जैसे विश्वास नहीं हुआ। पूछा, "हरिभजन, तुम्हारे पास किताब है ?"

"जी, हाँ।" उसने किताब मेरे सामने की, "यदि विश्वास नहीं हो, तो देख लीजिए।"

"अच्छा, बैठ जाओ।" और मैंने आगे पढ़ाना शुरू किया। लेकिन मन पढ़ाने में नहीं लगा। सोचा, बड़ी देर कर दी। किसी से उधार लेकर भी इसकी फीस भर देनी चाहिए थी, इसे किताब खरीद देनी चाहिए थी। इसकी माँ ने न जाने क्या-क्या सहा होगा।

फिर सोचा, माँ के एक ही तो बेटा है, जिद्द पर आ गया होगा। बेचारी बुढ़िया ने एकाध गहता बेचकर ड्रेस बनवा दी होगी। मुझे बुढ़िया की विवशता पर बड़ी दया आयी। विचार आया, शायद इसने यजमान-वृत्ति शुरू कर दी है।

बात ही बात में एक दिन घर वाली ने कहा, "सुनाजी तुमने ! यह हरिभजन तो बड़ा तेज निकला। आखिर उसने यजमान-वृत्ति शुरू नहीं की, तो नहीं की। जब माँ ने बहुत कहना, बोलना शुरू किया, तो मजदूरी बननी शुरू कर दी।"

"मजदूरी !" मैंने आश्चर्य व्यक्त किया, "बह तो लेंगवा है।"

"हाँ, फिर भी ऐसा दोड़-दोड़ कर काम करता है कि जवान से जवान को पीछे छोड़ जाता है। दो घण्टे मुबह, दो घण्टे शाम को काम करता है और आधी मजदूरी लेता है।" 'हूँ', मेरे सामने हरिभजन की फीस, किताब और ड्रेस दी देने लगी। उसका बेहुरा फलम की तरह सामने आने लगा और उसकी आँखें मुझे यह कहती हुईं प्रतीत हुईं, "आप मुझे दान देना चाहते हैं न ! लेकिन मैं हासैंगा नहीं। नहीं लूंगा दान।" मुझे अपने विचारों पर बड़ा धोम हुआ। क्या-क्या सोचा था मैंने उस विवशता, पर परिधनी छात्र के लिए।

दूसरे दिन मैं स्कूल गया तो हरिभजन मुझे अपने से भी बड़ा नजर आया।

## मूक प्रेरणा



जी० यी० आचार्य

मेरा स्थानान्तर एक मुख्य स्थान पर हो गया। यह स्थान शहर के समीप और रेल तथा बस मार्ग के बीच अवस्थित था। यह विद्यालय भी अब मिट्टिले से हाई ओर हाई से हायर मेकेनिकी तक बढ़ा दिया गया था। स्थानीय छात्रों की अपेक्षा समीपस्थ और दूरस्थ गाँवों के छात्र अधिक संख्या में आते थे। विद्यालय के लिए यहाँ पर्याप्त भवन नहीं था और न उनके विकास एवं विस्तार के लिए भूमि ही। पार्श्व में रेलमार्ग था तो सम्मुख राजमार्ग। छात्रों के मेलादि के लिए पर्याप्त ग्रीहंगमन नहीं थे। प्रधानाध्यापक को मेलों में बड़ी रुचि थी। उन्होंने छात्रों में भी उसे जागृत किया किन्तु स्थान का अभाव एक समस्या थी। विद्यालय के मुख्य भवन और रेलमार्ग के बीच एक ऊँचा टीला था। प्रधानाध्यापक के मस्तिष्क में सम्भवतः एक योजना थी। वे अवसर कहा करते, "यथा करें यार, रेल के लिए मैदान नहीं है वरना गूँथ रेल खेलते और दूसरे स्कूलों से हम मैच लेकर जीतते भी।" अनेक अवसरों पर उन्होंने ये विचार कहे। एक दिन वे स्वयं दो नौकरों को लेकर उस टीले की मिट्टी काटने के काम पर खड़े हो गये। छुट्टी का समय हो रहा था, उन्होंने नौकरों से बड़ी ही सहजता के साथ कहा, "ऐसे नहीं ऐसे.....इसे इधर से काटो।" यह कह कर घेंती स्वयं अपने हाथों में थाम कर मिट्टी काटने में जुट गये। छुट्टी हुई, लड़के नये काम को होता देख चारों ओर इकट्ठे हो गये। कुछ देर वे खड़े-खड़े देखते रहे और फिर बड़े संकोच से उन ग्रामीण छात्रों ने सहज ही मानों मूक प्रेरणा ग्रहण कर प्रधानाध्यापक जी से कहा, "लाइए, हमें दीजिए, हम छोद दें।" वे तत्काल वर्जना का भाव व्यक्त करते हुए बोले, "नहीं, नहीं! यह तुम्हारे बस का नहीं है और अब थोड़ी देर में तुम्हारे जाने का समय भी होने आया।" ये बच्चे रेल से अपने गाँवों को जाते थे। छात्रों ने बड़ी

नधता से, किन्तु दृढ़ता से कहा, "नहीं माह्व, अभी गाड़ी आने में आधा घण्टा भेष है। जैसा आप बतायेगे वैसे ही खोद दोगे।" प्रधानाध्यापक जी ने उन्हें मनेन देने हुन कहा, "इन् ऐमे मोदो।" वे अपने हाथ की घेंती जमीन पर गनवर अलग राडे हो गये और कहने लगे, "है बड़ा मुश्किल" बहुत बड़ा है न" परन्तु यदि माफ हो जाय तो स्कूल की मूरत बदल जायेगी।" बच्चों ने प्रमत्त बदन से मुक्त सहमति व्यक्त की और बिना किसी के कहे एक-एक कर अनेक उम काम में जुट गये। स्वाभाविक अनुवर्तन का विचित्र दृश्य था। गन्ध्या घिर रही थी। गाड़ी आने का समय हुआ। बच्चे स्वतः काम छोड़कर चल दिये। रिती ने किसी को कुछ नहीं कहा। दूसरे दिन सुबेरे देखा, ज्यो-ज्यों बच्चे आते गये, प्रधानाध्यापक जी की कृपि भूमि के कार्यकर्ताओं के साथ उम टीचे पर काम करने देग वे भी उनका अनुकरण करने लगे। उस दिन प्रार्थना के पश्चात् प्रधानाध्यापक जी ने कहा, "राडको को मेलने का बड़ा शोष है। हम उनगे इगकी कीम भी लेते हैं किन्तु मजदूरियों से व्यवस्था नहीं कर पाते। इगमें मैं अपनी ही गलती मानता हूँ। मेरी कोशिश है कि यह जो ऊँचा टीचा हमारे बीच में गड़ा है यदि हटाया जा सके और हम भूमि को हम गमतल बना सकें तो हमारा काम बन जायेगा। हालाँकि यह बहुत कठिन है। मैंने इग कार्य को प्रारम्भ किया है। जो बच्चे स्कूल लगने के पूर्व या बाद में अथवा अन्य समय में अपना कोई काम हर्जं किये बिना कुछ योग दे सकें तो अवश्य दें।" उम दिन के बाद मैंने देखा कि कोई छात्र ऐसा नहीं था जिसने इस यत्न में आहुति न दी हो। काम करने की प्रतिस्पर्धा थी, दृढ़ता थी, लगन थी। मध्याह्न में भी वे लोग अपना भोजन कर इस काम में जुट जाते। सबसे आश्चर्यजनक बात थी कि उनके अभिभावक बिना किसी आमन्त्रण के आते और प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से इस काम में अपना योग देते रहते। परिणाम यह हुआ कि कुछ ही महीनों में वह विशाल टोस टीचा उतर कर धरती पर आ गया मानो यथार्थ को समय रहते उसने पहचान लिया हो।

मैं बहुत पहले वहाँ में बदलकर कई नये स्थानों का सरकारी खर्च पर अनुभव कर आया हूँ और अब वहाँ में कुछ ही दूरी पर एक शहर के स्कूल में हूँ। लेकिन जब कभी उम राजमार्ग या रेलमार्ग से निकलता हूँ तो देखता हूँ उम टीचे को जिसे छात्रों ने सामूहिक परिश्रम से असमिथत पर उतर आने की विवश कर दिया था। उसके सामने एक रण-मंच, बाजू में कुछ अध्ययन कक्ष और पार्श्व में विकसित कृपि भूमि दिखायी देने लगी है।

मैं 'कैसे भूलें' इस घटना को? एक गूक प्रेरणा ने सामूहिक जन-करयाण के यश को गफल बना दिया।

## त्यागपत्र

सन्द्रकिशोर शर्मा

नये लोग, नया परियोजना और मेरा संकोच-रहित मन..... किसी तरह मैं विद्यालय की सीमा में प्रधानाध्यापक जी के कक्षा को सहमी-सहमी दृष्टि से खोजता हुआ आगे बढ़ रहा था। लोक-सेवा आयोग से चयनित होकर मैं प्रथम बार विद्या की सेवा के पवित्र भाव में भरा हुआ कार्य भार ग्रहण करने आया था। किसी प्रकार मुझे प्रधानाध्यापक जी के दर्शन हुए और फिर अन्य अध्यापक साधियों के, किन्तु यह सब मिलन-अभिवादन इतना क्षणिक रहा कि 'आ गये', 'आइए' और मुस्कान के अतिरिक्त कोई दूसरी बात न हो सकी। प्रार्थना का कार्यक्रम आरम्भ होने वाला था।

प्रार्थना के बाद एक अध्यापक महोदय ने मेरा कुछ प्रारम्भिक परिचय छात्रों को दिया और फिर उन्होंने विशेष परिचय के लिए मुझे ही बोलने को आमन्त्रित किया। मैं स्तब्ध रह गया; किन्तु मना न कर सका और १० मिनट की एक छोटी-सी वक्तृता दे डाली जिसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन से प्रधानाध्यापक जी ने मुझे प्रतिदिन प्रार्थना के पश्चात् छात्रों के समक्ष १०-१५ मिनट की नैतिक चर्चा करने का कार्य सौंप दिया।

छः माह बीत गये। एक दिन मैं पाँचवाँ कालांश पढ़ाकर कक्षा से बाहर आया था कि देखा कक्षा १० के कुछ छात्र मॉनीटर सहित मेरी ओर ही आ रहे हैं। मैं इस कक्षा का कक्षाध्यापक भी था। बालकों ने दयनीय रूप से अपनी समस्या इन शब्दों में प्रस्तुत की, "देखिए साहब, हमारी कक्षा से चपरासियों ने मेजें हटा दी हैं। बतलाइए तो अब हम वस्ते कहाँ रखें, कैसे पढ़ें?" कारण बताया गया कि प्रधानाध्यापक जी का आदेश हुआ है। आदेश के सामने मेरे पास छात्रों को आश्वासन देने तथा प्रधानाध्यापक जी की आज्ञा

का पासन करने के लिए कहने के अनिश्चित कुछ न था। मैंने उन्हें समझाया-बुझाया और दूसरी कक्षा में पढ़ाने चला गया।

मैंने सोचा कि समस्या का समाधान हो चुका। दिन बीत गया। मैं निश्चित था। दूसरे दिन यथामय विद्यालय पहुँचा। प्रार्थना से पूर्व ही छात्रों की उपस्थिति अंकित करने का नियम था। कक्षा में गया तो कुछ आश्चर्य हुआ और विपाद भी। बच्चे अपने बरतते लिये हुए गड़े थे। आज वहाँ स्टूल भी नहीं थे। अध्यापक की मेज व कुर्सी अवश्य यथावत् थीं। छात्रों की शिकायतें बरगती प्रपातों की तरह सबके मुँहों से वेगपूर्ण प्रवाहित होने लगीं। इस कार्य के पीछे मैंने प्रधानाध्यापक जी की किसी प्रशासनिक कठिनाई का अनुमान किया जिसमें अध्यापक द्वारा हस्तक्षेप किया जाना अनुचित है। अतः छात्रों को मैंने शीघ्र ही फ़र्श विछवा देने तथा स्वयं ही मेज व कुर्सी हटवाकर फ़र्श पर ही बैठने का आश्वसन दिया तथा उन्हें शान्तिनिकेतन एवं गुच्छुत आदि मन्थार्यों का सक्षिप्त परिचय देते हुए मादगी का महत्त्व बताया। तदन्तर प्रार्थना स्थल पर पहुँचने के लिए सभी विमज्जित हो गये।

कक्षा में बालक सभी प्रकार के होते हैं—उच्छ्रंखल एवं विनम्र। विनम्रों की उच्छ्रंखलता भी कभी-कभी साधियों के संमर्ग से प्रतिक्रिया के समम उभर आती है। प्रार्थना के पश्चात् पुस्तक व डायरी लेकर जैसे ही मैं कक्षा में पहुँचा तो देगा कि वहाँ कोई छात्र नहीं था। एक साथ अनेक भाव उत्पन्न हुए—शायद प्रधानाध्यापक जी से मिलने गये होंगे, शायद अभी पानी पीकर आ रहे होंगे, किसी दूसरे कक्षा में तो बैठने का प्रयत्न नहीं कर दिया गया है। आदि, आदि। सहसा मुझे एक छात्रा (कक्षा में एक छात्रा भी थी) बस्ता लेकर जाती हुई दिखायी दी। मैंने उसे बुलाया और अन्य छात्रों के सम्बन्ध में पूछा। ज्ञात कर दुःख हुआ कि छात्र कुर्सी व मेजों के अभाव में क्षोभवण पर चले गये हैं।

मैंने छात्रा को रोक लिया और कक्षा में जाकर यथाक्रम पढ़ाना आरम्भ कर दिया। कक्षा की स्थिति की सूचना चपरासी द्वारा प्रधानाध्यापक जी को भिजवा दी। मेरा विश्वास था कि यह बात-निर्वन्ध सामयिक है। इधर आज कुछ प्रधानाध्यापक जी से मिलकर व्यवस्था करूँगा तथा मार्ग में कोई छात्र मिल गया तो समझाऊँगा।

प्रथम कालाश बीता। चार कालाश मुझे लगातार पढ़ाने पड़ते थे। चौथा कालाश पढ़ा ही रहा था कि चपरासी ने प्रधानाध्यापक जी का बन्द पत्र मुझे दिया और एक पंजिका पर हस्ताक्षर लिये। मैंने उसे सामान्य पत्र ही समझ कर अपने हाथ में लगी पुस्तक में खोस लिया, किन्तु कालाश की समाप्ति पर विधाम के समय जब मैंने उसे खोला तो मस्तिष्क झूम्य हो गया, आँखों के सामने अंधेरा छा गया, और शरीर पसीना-पसीना हो गया। पत्र में मेरे प्रति आशीर्ष



लगाया गया था कि मैंने ही छात्रों को बहकाकर हड़ताल करायी है। स्पष्टीकरण तक तक देना है। स्पष्टीकरण ! विद्य विद्य मकना था, कविता, कहानी और एकांकी भी, किन्तु स्पष्टीकरण विद्या तो दूर, मैंने किसी का विद्या हुआ स्पष्टीकरण उस समय तक नहीं पढ़ा था। और फिर उस विद्या का स्पष्टीकरण क्या जो स्वयं मुझे ही स्पष्ट न हो। मुझ ने मेरे हृदय को मिचोड़ कर आँसों को सजल बना दिया।

'स्टाफ-रूम' में आया। सभी तरह की बातें—उन्नेजक भी और मान्द्वनामयी भी। आश्रम में मेरा हृदय उबल रहा था। प्रधानाध्यापक जी से बात कैसे करूँ, वह तो निर्णय ने चुके थे। वग, उस दिन मैं विचार-शून्य विचारक की सी मुद्रा में ही रहा। एक कालांश में और पड़ना था। गया, किन्तु कुछ पढ़ा न सका।

एकांकी रहता था। घर आकर समंजरणदायिनी गेट पर बैठ गया। मैंने भोजन नहीं किया क्योंकि उसकी रूखा भी नहीं थी। मस्तिष्क में एक ही चिन्ता थी कि उत्तर क्या लिखूँ ? कैसे लिखूँ ? यह विचारता हुआ ही सो गया।

अपने क्रम ने रात आयी और चली गयी। दूसरे दिन प्रातः जब उठा तो ऐसा लगा मानों किसी आलोकमय शिगर ने तमोमय गर्त में जा गिरा हूँ। अब मुझे पुनः चिन्ता अपने तीरे और कूर पंजों से कनोटने लगी थी।

धीरे-धीरे मेरी आत्मा ने एक उपाय गुंथाया। मैं अकथ विश्वास से भर गया। स्पष्टीकरण लिखने के लिए उठायी हुई लेगनी और कागज को मैंने एक ओर रख दिया और उत्साहपूर्वक दैनिक कार्य में लग गया।

समय पर विद्यालय पहुँचा। साथियों ने प्रश्न किया, "लिख लाये स्पष्टीकरण.....दिखाओ ?" सम्भीरतापूर्वक मैंने उन्हें प्रार्थना के पश्चात् दिखाने के लिए कहा। प्रार्थना हुई। कनार बांधे कक्षाओं का सड़ा हुआ छात्र-दल। कक्षा १० के छात्र भी उपस्थित थे (जबकि इससे पूर्व दिन कक्षा में कोई नहीं गया था)। वस्ते कन्धे से लटके हुए, सभी हाथ जोड़कर ईश-प्रार्थना में मग्न। दूसरी ओर पवित्रवद्ध अध्यापक साथी और कुछ हटकर श्रीमान् प्रधानाध्यापक जी।

प्रार्थना की समाप्ति पर एक अध्यापक जी ने छात्रों को दैनिक समाचार सुनाये। अब मेरा क्रम था, नैतिक चर्चा करने का। आगे बढ़ा। छात्रों को सम्बोधित करते हुए मैंने ये शब्द कहे :

"प्रिय विद्यार्थियो ! गत छः माह से मैंने प्रार्थना के इस पवित्र स्थल पर खड़े होकर आपको चरित्रवान और शुभ संकल्पवान बनने की शिक्षा दी है। आज उसकी परीक्षा का दिन है। श्रीमान् प्रधानाध्यापक महोदय का विश्वास है कि कल कक्षा १० के छात्रों को मैंने ही बहकाकर हड़ताल करायी थी। उन्होंने

इसका स्पष्टीकरण भी मुझसे मांगा है। मैं स्वयं ऐसे कार्य को शिक्षक-गौरव के अनुरूप नहीं समझता। इसलिए यदि मैंने कक्षा १० ही नहीं विद्यालय के किसी भी छात्र से कभी, कही, किसी भी प्रकार की सस्था के अहित या सस्था कर्म-चारियों के विरुद्ध कोई बात की हो अथवा किसी भी रूप में उन्हें बहकाया हो तो विद्यालय का कोई भी छात्र आगे बढ़कर निर्भक्ता से यह कहें। मैं विष्णुवाम दितता हूँ कि मेरी उस छात्र के प्रति कोई दुर्भावना नहीं होगी। साथ ही मैं घोषणा करता हूँ कि ऐसा होने पर मैं अभी शिक्षक-पद से त्याग-पत्र देकर चला जाऊँगा, क्योंकि ऐसी स्थिति में मैं स्वयं को शिक्षक बनने का अधिकारी नहीं मानूँगा। मैं इसके लिए आपको ५ मिनट का समय देता हूँ।"

समस्त विद्यालय निस्तब्ध था तथा प्रधानाध्यापक जी कुछ विचलित। एन० डी० एम० आई० जी ने प्रधानाध्यापक जी की विकसता या उनके सकेत को पाकर छात्रों को कक्षा में जाने का आदेश दिया और छात्रों पर अनुशासन-कारिणी छड़ी के कुछ प्रहार भी किये। भगदड़ आरम्भ हुई। मैंने देखा कि यों तो बात अधूरी ही रह जायेगी। आत्मविश्वास और ग्राह्य के साथ पहले मैंने एन० डी० एम० आई० जी को और फिर छात्रों को सम्बोधित किया, "यदि तुम्हारे हृदयों में मेरे प्रति किंचित् भी श्रद्धा है तो मेरा आदेश है कि कोई भी छात्र ५ मिनट तक अपने स्थान से विचलित नहीं होगा। यह समय तुम्हारे विचार करने और निर्णय करने के लिए दिया गया था, कर्तव्य भूमि से भागने के लिए नहीं।" शब्द कुछ उच्च स्वर से बहे गये थे। और मैंने देखा कि विद्यालय के छात्रों के भागने हुए कदम यन्त्र की तरह रुक गये। राब पुनः पूर्ववत् कतारों में आ गये और एक साथ ही बोल उठे, "नहीं! आपने ऐसा कभी नहीं कहा।"

मेरा वक्ष गर्व से फूल उठा। प्रत्यक्ष स्पष्टीकरण दिया जा चुका था। मैंने उन्हें कक्षा में जाने की अनुज्ञा दे दी और पीछे हटकर साधियों की पक्ति में खड़ा हो गया। एक ही विचार मेरे मानस में तरंगित हो रहा था कि बालकों की आत्मा कैसी निष्कल और निर्विकार होती है। ईश्वर ने उनके हृदयों को विमल सत्य से ही गढ़ा है। यह समाज ही बाद में उनके सत्य-स्वभावों को मन पर असत्य का लेपन करता है। या तो शिक्षक को पाकर ये धन्य होते हैं या इन्हें पाकर शिक्षक ही धन्य है।

जीवन में जब कभी यह घटना मुझे स्मरण हो आती है, मैं शिक्षक के कर्तव्य की मुश्ता और पवित्रता से भर उठता हूँ। वस्तुतः उस दिन बालकों के सत्य ने मुझे शिक्षा-विभाग के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया, अपने जीवन के प्रति कुप्टा एवं शिक्षक-पद के प्रति हेय कुत्सा की भावना से बचा लिया था। मेरे शिक्षक जीवन के ये क्षण मेरी स्मृति की अमूल्य निधि हैं। भला इन्हें 'कैसे भूलूँ'।

## मंज़िल तेरे पग चूमेगी



सीता अप्रयास

अक्टूबर १९६१ की बात है। मैं विद्यालय के स्टाफ़ व ५०-६० छात्राओं के एक दल को लेकर गाढ़पुरा से अजमेर, जयपुर, भरतपुर, आगरा, दिल्ली, अलवर आदि की शैक्षणिक यात्रा के लिए गयी थी। हम लोगों को पूर्व निश्चित कार्यक्रम के अनुसार भरतपुर से फ़तहपुर सीकरी होते हुए सीधे आगरा जाना था। जयपुर में गुना था कि भरतपुर व फ़तहपुर सीकरी से आगे आगरा के रास्ते में तेरह गोरी बांध के किसी नाले में बाढ़ आ जाने से रास्ता कुछ दिनों से बन्द है। भरतपुर में ही बस ड्राइवर को स्टैंड जाकर रास्ते के सम्बन्ध में अच्छी तरह पता लगा आने को कहा। उसने लौटकर बताया कि १०-१२ दिन से रास्ता बन्द था पर अब पुनः चालू हो गया है। हम लोग निश्चिन्त होकर फ़तहपुर सीकरी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थानों को देखकर तीसरे पहर आगरा के लिए रवाना हुए। बस तेज़ी से दौड़ रही थी और हमारा मन भी उस युग की ओर दौड़ रहा था जब राणा सांगा ने बाबर से खानवा के भयंकर युद्ध में टक्कर ली थी। फ़तहपुर सीकरी के अवलोकन से स्मृतियाँ हरी हो गयी थीं, मस्तिष्क में इतिहास के पृष्ठ पलट रहे थे। बाबर का आना, राणा की पराजय, अकबर का मुगल राज्य की नींव भारत में जमाना, उसकी न्याय-प्रियता, राजनीतिक कौशल तथा विलासिता के अनेक किस्से फ़तहपुर सीकरी के भव्य भवनों को दिखाते समय गाइड द्वारा सुनाये गये थे। मन उन्हीं में रमा हुआ था कि अचानक घरटे के साथ हमारी बस जंगल में रुक गयी। नज़र उठाकर देखा तो बुद्धि चकरा गयी। वीराने में सड़क पर बसों व ट्रकों की लम्बी पंक्ति लगी हुई थी, खटका हुआ कि बाढ़ की समस्या हल नहीं हुई मालूम होती। तुरन्त ड्राइवर एवं एक अध्यापका को आगे जाकर ठीक से पता लगाकर आने को कहा। अंदेशा सत्य निकला। ड्राइवर ने बताया कि आधा

मील तक बगैरे पट्टे पड़ी हैं और आगे रास्ता बन्द है। फतहपुर सीकरी के आनन्दमय अनुभव के पश्चात् आगरा और ताजमहल के प्रबल आकर्षण से पूरा दल अभिभूत था तथा इस व्यवधान से सभी विभ्र हो उठे। सूर्य अस्त हो चुका था और यह सोचकर कि रात को ऐसे अगुरक्षित स्थान पर बालिकाओं के साथ पड़े रहना अनुचित होगा, मैंने ड्राइवर को समीप के किसी गाँव में ले चलने को कहा और छात्राओं को समझा दिया कि सुबह वापस यही आकर आगे बढ़ने की मुक्ति सोचेंगे।

समीप ही किरावली नामक एक कस्बे में पहुँच कर बस्ती से बाहर एक इण्टर कनिज में ठहरने की व्यवस्था की, सामान उतार कर भोजन बनाया। छात्राओं के कार्यक्रम पर विचार-विमर्श हुआ। स्टाफ व छात्राएँ किसी तरह आगरा देने बिना वापस लौट जाने की तैयार न थी। अन्त में यही निष्पत्ति हुई कि यथासम्भव आगे बढ़ने का ही प्रयास किया जाय।

अगले दिन सूर्योदय से पूर्व ही पूरे आत्मविश्वास के साथ हम लोग चल पड़े। आध घण्टे में बाढ़ के स्थान पर पहुँच गये और सब लोग उतर पड़े। दूर-दूर तक पानी ही पानी था। रेल की पटरी टूटी पड़ी थी, मरम्मत का काम मन्दिर गति से चालू था, सड़क भी कोई आध मील तक टूट गयी थी, गहरे गड्ढे व दलदल हो रहा था और अभी भी सड़क पर कहीं-कहीं एक-एक बालिश पानी बह रहा था। दलदल में कई ट्रकों बुरी तरह फँसी हुई थी, एक ट्रक को हटाने की पूरी कोशिश जारी थी क्योंकि उसके हटने पर ही सड़क की आवागमन के योग्य बनाने का प्रयास किया जा सकता था। बसों और ट्रकों के किनारे ही चालक असहाय पड़े थे। हमने सड़क पर पैदल जाकर देखा, रास्ता पैदल पार किया जा सकता था और एक फलौंग तक यदि थोड़ी पट्टी पर पत्थर तथा लकड़ डालकर गड्ढे भर दिये जायें तो धीरे-धीरे खाली बस भी निकलने की सम्भावना है। यह मालूम होते ही निराश दल के चेहरे आशा से चमक उठे और हम सब ने तुरन्त लकड़ तथा पत्थर डालकर गड्ढे भरना शुरू किया। कतार की कतार बालिकाओं को उत्साहपूर्वक गड्ढों में ईंट, पत्थर, लकड़ डालते देख पाम खड़े ड्राइवरो व अन्य पुरुषों को लज्जा अनुभव हुई और वे कहने लगे, "आप लोग हमें धर्मिन्दा न करें, इन छोटी बच्चियों से आप पत्थर डलवायें यह हमें अच्छा नहीं लगता।" मैंने कहा, "आप लोग ४-६ दिन में यहाँ पड़े हैं और दो दिन पी० डब्ल्यू० डी० के भरोसे और भी बैठे रह सकते हैं पर मैं इन लड़कियों के साथ यहाँ पड़ी नहीं रह सकती। इसलिए हमें तो राह निकालनी ही होगी।"

अन्त में उन सब ने भी काम शुरू किया, प्रति ट्रक २ रुपया चन्दा कर मजदूर भी लगाये गये। अब काम अच्छी गति से प्रारम्भ हो गया और फँसी

हई एक टुक निकल गयी तब मैंने झाडवर को राखना ठीक-ठाक होने ही माँड़ी ने आने की हिदायत देकर छात्राओं के साथ खाना हई । उस पार जाकर छाया में बँडे और गान-बजाकर समय काटने लगे । संध्या के ११ बज गये, न खाने का पना, न पानी का डिकाना । अन्त में छात्राओं व अन्य अध्यापिकाओं को उस पार छोड़कर मैं वापस आयी । काम करीब-करीब पूरा हो चुका था परन्तु झाडवर बढ़ने की हिम्मत नहीं कर रहा था । उसका कहना था कि पहले दो-एक गाडियाँ निकल जायें तब आगे बढ़ूँ । परन्तु मेरे यह समझने पर, कि हमारी लगी बस को निकल सकती है लेकिन इन पुरानी ट्रकों में से कोई यदि फिर फँस गयी तो हमारी सब मेहनत बेकार हो जायेगी, बड़ी कठिनाई से झाडवर मेरे साथ बस लेकर बढ़ा । दलदल में आते ही पत्थर गिराकने लगे, बस झलने लगी और पूरा जोर लगाने पर ही बड़ी कठिनाई से दलदल वाले टुकड़े में बाहर निकली ।

उधर बस को आते देखा सबने खुशी से उछलना व निलताना शुरू कर दिया । किसी ने झाडवर की जय बोली किसी ने वजरंगवनी की । किसी ने मनोनी मनार्थी तथा किसी ने प्रसाद बोला । करीब आधा मील जाकर बस ठहरी । बालिकाएँ दौड़कर बस में चढ़ गयीं और मुँस से लिपट गयीं । इतने पानी के बीच भी सबका प्यास में बुरा हाल था । कोई १ मील आगे साफ पानी के कुएँ पर बस रोककर सबने पानी लिया और 'मंजिल तेरे पग चूमेगी, आज नहीं तो कल' गाते हुए आगे बढ़े ।

आज भी बाट का वह दृश्य, दलदल और पानी को पार कर आगे बढ़ जाना भुलाया नहीं जाता । साथ ही उस अनुभव की स्मृति हमें सदा साहस, आत्मविश्वास व सामूहिक श्रम द्वारा बड़ी से बड़ी बाधाएँ पार करने की प्रेरणा देती है ।

## दृढ़ इच्छा शक्ति

भागोरथ भागव

विद्यालय में एक पर्यटन समिति गठित की गयी। इस समिति में मैं और एक अन्य साथी अध्यापक थे। शीतकालीन अवकाश में शैक्षणिक पर्यटन की योजना बनायी गयी। अवकाश की एक प्रातः बेला में सी में अधिक छात्र व कुछ अध्यापक पर्यटन के लिए रवाना हुए। उल्लास व उमंगों में डूबे छात्र किन्हीं गीतों की कड़ियों को गुनगुनाते हुए यात्रा व अनुभवों की गुनद बरपना में डूबे थे।

पर्यटक दल के एक नेता के रूप में इस लम्बी शैक्षणिक यात्रा में मेरे अनेक अविस्मरणीय क्षण व अनुभव जुड़े हैं। यही उन अनेकों अनुभवों में से केवल एक का उल्लेख समीचीन होगा।

प्रातः अलवर में चले थे। कुनुबमीनार देखने हुए हम देहली नगर में आ गये। सन्ध्या तक राजधानी भ्रमण करते थे पश्चान् रात्रि विधाम के लिए एक विधामशाता में व्यवस्था की और छात्र विधाम करने लगे। कुछ समय पश्चात् ही एक छात्र ने आकर सूचना दी कि एक छात्र अस्वस्थ है। मैं तुरन्त उस छात्र के पास गया। उसका शरीर छूकर देखा। वह गरम था तदा मन्त्रक जल रहा था। मैं चिन्तित हो उठा। रात के ग्यारह बजे थे। Last Aid Hour में मैंने कुछ Tablets छात्र को दी और दो छात्रों को विशेष देखरेख के लिए कहा। अस्वस्थ छात्र से पूछनाछ करने पर ज्ञान हुआ कि कुछ ही दिनों पूर्व उसे टाइफाइड हो चुका है और वह काफी कमजोर है। यह जानकर चिन्ता हुई कि टाइफाइड कही रिपेप्स न हो जाय। छात्र के माता-पिता पर भी क्रोध आया कि जिन्होंने बीमारी में उठे व निर्वैल छात्र को इस लम्बी यात्रा के लिए किस प्रकार भेज दिया? मलाह की गयी कि अभी ठीक यात्रा की शुरुआत है। अतएव बीमार छात्र को लेकर आगे बढ़ना उचित न होगा,

अतएव छात्र की वापस अनवर सीटा दिया जाय या उसके स्थानीय रिश्तेदारों के पास छोड़ दिया जाय । छात्र की बड़ी बहन देहली में ही विवाहित थी । छात्र से कहा गया कि वह अपनी बहन का पता दे ताकि उसे वहां छोड़ आया जाय । छात्र फूट-फूटकर रोने लगा । आंगू उमके भग्ने ही न थे । सोना प्रायः उसे अपने माना-पिना याद आने है और नकनीक अधिक है; किन्तु उमने दृढ़ता से साथ स्पष्ट रूप से कहा, "मैं आप सभी के साथ श्रीनगर तक चलेगा ।" राज मुहरने की प्रतीक्षा की और प्रातः इस सम्बन्ध में कोई भी निर्णय लेने का निश्चय किया । प्रातः छात्र काफी स्वस्थ नजर आया । छात्र के आगम पर दो अन्य छात्रों की विशेष निगरानी में उसे लेकर हम आगे बढ़े । कर्नाल के निकट फिर उसे रोज़ बुझा हो आया । एक कस्बे में गुजरते हुए एक स्थान पर रेडक्रॉस का चिह्न देकर बस रोकी । आंफ-टाइम में सरकारी डॉक्टर को जमाया, छात्र के लिए दवाइयां ली और आगे बढ़े । दूसरे दिन छात्र फिर स्वस्थ था । पठानकोट में वह अधिक बीमार नजर आया । निश्चय किया गया कि पठानकोट के सरकारी हॉस्पिटल में छात्र को भरती करा दिया जाय और श्रीनगर से लौटते हुए अपने साथ ले लिया जाय । इस प्रकार छात्र को आराम मिलेगा और वह ठीक हो सकेगा । विचार इस दृष्टि से उत्तम ही था, किन्तु छात्र ने पुनः उस प्रस्ताव को उगी दृढ़ता और कठिनाई के साथ अस्वीकार कर दिया । मजबूरन उसे भी साथ लेकर आगे बढ़े । एक आश्चर्य का अनुभव किया गया । ज्यों-ज्यों श्रीनगर निकट आता गया, छात्र अधिक स्वस्थ और प्रफुल्लित नजर आया । श्रीनगर पहुँचने पर तो वह पूर्ण स्वस्थ हो गया और सभी छात्रों के संग कड़कड़ाती ठण्ड में गुलमर्ग गया, टट्टू की सवारी की, रुई-सी शरती बर्फ़ देखी । छात्र की श्रीनगर तक पहुँचने की बलवती इच्छा शक्ति से हम चमत्कृत हुए । छात्र को डॉक्टर की दवा ने नहीं उसकी इच्छा शक्ति ने ही स्वस्थ बनाया था ।

बालकों को तो हम अनेक बातें सिखाते ही हैं किन्तु इस बालक के आचरण से दृढ़ इच्छा-शक्ति का जो चमत्कार मुझे देखने को प्राप्त हुआ वह मेरे लिए कम महत्त्वपूर्ण शिक्षा नहीं है । ऐसी अनेक बातें बालकों से शिक्षकों को सीखने के लिए मिलती हैं । किसी भी कार्य में कठिनाई आते ही मुझे यह प्रसंग याद आ जाता है और हृदय एक अटूट साहस से भर जाता है ।

अक्टूबर का महीना था। माध्यमिक कन्याशालाओं की छानाओं की खेल-कूद प्रतियोगिता प्रारम्भ होने में करीब एक महीना बाकी था। प्रत्येक शाला की छात्राएँ व अध्यापिकाएँ जी-जान से सेलों के अभ्यास में लगी हुई थी। मैं तथा मेरी एक और गहेसी अपनी शाला की 'खो-खो' की टीम की इन्चार्ज थी। हम दोनों ने मन में दृढ़ निश्चय किया था कि कुछ भी हो हम बार 'खो-खो' का मैच अवश्य ही जीतना है जो गत वर्ष जीत कर भी हार गये थे (केवल एक पॉइण्ट से)। हमारी शाला में खेल के मैदान का अभाव था। छात्राएँ सीमेंट के पक्के आँगन में ही अभ्यास करती थी। प्रतिदिन उस आँगन में गिरने से छात्राओं के जगह-जगह चोट आ जाती थी। कभी पड़ने पर के मौस की फाड़ कर खून चमक उठता था, कभी कोहनी तथा टांगने पर लगी चोटों से खून की दो-चार बूँदें आँगन में टपक पड़ती थी। लेकिन शालिकाओं में ऐसा उत्साह था कि चोटों की परवाह न करके भी खेलती रहती थी। शायद उनकी चोटों का दर्द उनके चोट लगे अंगों में कम और हमारे दिल में अधिक होता था।

शुक्रवार का दिन था। खाना बन्द थी। परन्तु 'खो-खो' की टीम का अभ्यास जारी था। दिन के करीब दो बजे थे। हम अपनी टीम की उसी पक्के आँगन में अभ्यास करवा रहे थे। लेकिन आज मैच कम नहीं था रहा था। टीम की कैंप्टन, जो प्रतिदिन पाँच मिनट का समय अकेली ही खेलती थी, आज दो-दो, तीन-तीन मिनट में ही आउट हो रही थी, वह हाँक कर दब कर बैठ जाती थी। हम दोनों का अनुमान यह था कि वह दब अधिक नहीं है। २० मिनट के रेस्ट के बाद खेल फिर शुरू हुआ। एकाएक कैंप्टन मेरे-



मेहनतें गिर गयीं, उसकी कोठली में गुन निकल आया। मैंने उसे उठाया, वह कोठली के गुन को समान में पीछी हुई 'कुछ नहीं बहिन जी, कुछ नहीं' कह कर उठ गयी। निमित्त यही, वह फिर सोड़ पड़ी। करीब पांच मिनट बाद वह होकती हुई गम्भे को दोनों हाथों में पकड़ कर उसके चारों तरफ घूमने लगी। हम उसके पकड़ लगाने के स्ट्राइक की तारीफ ही कर रहे थे कि वह गिर गयी। निमित्त सोड़ कर मैं वहां पहुँची। देखा, कैप्टन बेहोश हो चुकी थी। हम दोनों ने उसे उठाया, छात्र में ले जाकर पानी के छीटे मुँह पर दिने लया थोड़ा पानी पिलाया। उसे थोड़ी-सी चेतना आयी। मेरी आँखें बालिका के चेहरे पर। मैं कान आपस में कुमकुमाती लड़कियों पर थे जिनके छुट-पुट पल्ल मुझे सुनायी दे रहे थे। 'तुम अभी थोड़ी देर आराम करो' कह कर मैं वहाँ से उठी और ऊपर कमरे में जाने की सीढ़ियाँ चढ़ ही रही थी कि नथिना (मेरी महेली) ने बताया कि लड़कियों में पता चला है कि कल से उसके घर माना नहीं बन पाया है, वह भूखी है। मुझे लगा कि किसी ने मेरा कनेजा चीर दिया है और एकएक मेरे मुँह से निकल गया 'बसा' ? लेकिन उसकी हमी और आने देना हम दोनों चुप होकर ऊपर चढ़ गये।

कमरे की मेज पर बैठी मैं सोच रही थी कि इसके बेहोश होने का उत्तर-दायित्व मुझ पर है। अध्यापिका होने के नाते मुझे अपनी बालिकाओं के घरेलू वातावरण तथा उनकी आर्थिक स्थिति से अवश्य परिचित होना चाहिए। लेकिन उम समय सबसे बड़ी समस्या थी उसे माना पिलाने की। कुछ समय बाद हमने टीम में घोषित किया कि आज हेवी नाश्ता होगा। टीम में नालियाँ बज उठीं। नाश्ता मँगाकर बाँटा गया, सभी-वच्चे खुज-खुश हो रहे थे। मेरी आँखें कैप्टन पर टिकी थीं जो कल से भूखी थी। मैंने देखा, उसके हाथ मुँह में कौर रसते समय काँप जाते थे। काफ़ी देर की इस कणमकण के बाद उसकी आँखों में आँसू चमके, जिन्हें उसने सबकी निगाहों से बचाकर (मिबाय मेरे) नाश्ते के आगिरी कौर के साथ पी लिया। शायद उसे अपना छोटा भाई याद आ गया होगा।

मैंने छुट्टी करने को कहा। सभी ने कुछ देर और खेलने की इच्छा प्रकट की और कैप्टन भी तपाक से बोली, "बहिन जी ! अभी और खेलेंगे। हमें इस बार 'खो-खो' का मैच अवश्य जीतना है।" मैं उसका भोला चेहरा देखने लगी और अचानक ही 'मिलो' कह दिया। जैसे मैं उसकी हर इच्छा पूरी करने पर तुली थी। उसके बाद टीम प्रतियोगिता में खेली और विजयी घोषित कर दी गयी। विजय की खुशी में हुलसित टीम के वच्चों ने कैप्टन को कंधे पर बैठा लिया।

बच्चे खुशी में पागल थे। मैंने टीम व टीम के कैप्टन को शाबाशी व बधाई दी। कैप्टन ने बड़कर मेरे पाँव छुए। अचानक मैंने उसे छाती में लगा लिया। मेरी आँखें नम हो गयीं। आज भी किसी बालिबा के उदास चेहरे को देखनी हैं तो मेरी आँखों के सामने स्कर्टे दलाउज, सफेद मोठे, लाल जूते पहने बहू गोन, भोला, माँवला चेहरा उभर आता है और मुझे अपने टीम कैप्टन की याद आ जाती है। आज भी शाबा के भोले-भाले उदाम चेहरे मुझे उस उदासी का कारण जानने को मजबूर कर देते हैं।

